दुरसा आढ़ा

भारतीय साहित्य के निर्माता

दुरसा आढ़ा

रावत सारस्वत



साहित्य अकादेमी

Durasa Aadha A monograph by Rawat Saraswat on the Rajasthani author Sahitya Akademi, New Delhi (1983), Rs 4

प्रथम संस्करण 1983

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फीरोजशाह रोड, नई दिल्ली 110001

क्षेत्रीय कार्यालय
ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700029

29, एल्डाम्स रोड (द्वितीय मंज़िल), तेनामपेट, मद्रास 600018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400014

मूल्य
चार रुपये

मुद्रक
संजय प्रिंटर्स,
दिल्ली 110032

विषय-क्रम

अध्याय 1

जीवन-परिचय

मध्ययुगीन राजस्थानी साहित्य मे चारण कवियों की एक लम्बी और गौरवपूर्ण परम्परा रही है। ये लोग अपनी मशक्त काव्य क्षमता और प्रतिभा से क्षत्रियोचित गुणो को प्रोत्साहित करते थे। स्फूर्ति और प्रेरणा से ओतप्रोत अपने काव्य का स्वय ओजस्वी वाणी मे पाठ कर ये वीरो मे जैसे नए प्राण फूक देते थे। कलम के धनी इन कवियो ने अनेक युद्धो मे स्वय तलवार चलाकर आदर्शो के लिए मर मिटने की अमूर्त भावना को साकार किया था। कथनी और करनी का यह अपूर्व सामजस्य उन्होने चरितार्थ करके दिखाया था। देशभाषा म कहे गए चारण कवियो के वे गीत कवित्त राजस्थानी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। ऐसे ही स्वनामधन्य कवि-पुगवो मे अग्रगण्य थे, अपने समय के अत्यधिक यशस्वी और अद्भुत प्रतिभासम्पन्न कवि, दुरसा आढा।

चिरकाल से भारतीय कवियो और लेखको मे एक ऐसी विनयपूर्ण भावना रही है जिसन उन्हे स्वय के विषय मे विशेष ज्ञातव्य प्रस्तुत करने से वर्जित किया है। यही कारण है कि हम अपने महानतम कवियो-लेखको के व्यक्तिगत जीवन के विषय मे उनकी रचनाओं से कुछ नही जान पाते। वाल्मीकि, पाणिनि, भास, कालिदास, तुलसी, सूर आदि सभी महान लेखको ने इस विषय मे मौन ही रखा है। इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए राजस्थानी कवियो ने भी अपनी रचनाओ मे अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय म कुछ भी नही लिखा है। ऐसी स्थिति मे जो कुछ उन लेखको के विषय मे मौखिक परम्परा से ज्ञात होता है, उसी के आधार पर सुधीजनो ने उनके इतिवृत्त सकलित करने की चेष्टायें की हैं।

राजस्थान के चारण लेखको के विषय मे ऐसा ही एक प्रयत्न राजस्थान के ख्यातिप्राप्त इतिहासकार एव साहित्यप्रेमी स्व० मुशी देवीप्रसाद ने किया था। चारण जाति के अपने क्षेत्रो मे भी इस प्रकार की मौखिक परम्परा रहती आई है, पर उन्हें लिपिबद्ध करने की कोई सुनियोजित नीति पहले कभी नही अपनाई गई। आधुनिक युग मे साहित्य के शोध छात्रों तथा पत्र-पत्रिकाओ मे लेखको सपादको ने

शौरसेनी अपभ्रंश का सहारा लेकर 'पिंगल' नामक काव्य-भाषा मे रचनायें चालू रखी, तथा शेष ने आभीर अपभ्रंश की बहुलता के साथ 'डिंगल' नामकरण कर अपनी स्वतन्त्र भाषा का उद्घोष किया। 'डिंगल' का नामकरण विद्वानो के बहुमत के अनुसार 'पिंगल' के अनुकरण पर ही हुआ, पर दोनो काव्य-भाषाओ मे मात्र शैलीगत ही अन्तर नही था, अपितु भाषागत पार्थक्य भी पर्याप्त था। पिंगल और डिंगल के इस द्वन्द्व के पीछे भट्टों और चारणों के व्यावसायिक स्वार्थ ही अधिक थे। ये दोनो वर्ग लम्बे अर्से तक एक दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयत्न करते रहे। पर कालान्तर मे सामजस्य हो गया और दोनो ही वर्ग दोनो ही भाषाओ मे रचनायें करने लगे। चारणो और उनकी भाषा 'डिंगल' का पलडा निश्चय ही भारी रहा। पर यह ध्यान देने योग्य है कि चारण विद्वानो के रचित 'अवतार चरित्र', 'प्रवीण-सागर' 'वीरविनोद' आदि सुप्रसिद्ध ग्रंथ पिंगल मे ही लिखे गए, जबकि 'वशभास्कर' जैसे अतिप्रसिद्ध ग्रंथ मे भी 'पिंगल' का खुलकर प्रयोग किया गया। इस व्यावसायिक स्पर्धा का प्रारंभ सभवत सोलहवी शताब्दी मे अथवा इससे भी पूर्व ही हो गया था। यह भी सभव है कि भट्ट 'चदवरदाई' के विख्यात 'पृथ्वीराज रासो' के बाद ही चारणो ने इस स्पर्धा का प्रारंभ कर दिया हो।

राजस्थानी साहित्य मे चारणो की देन 'गीत' और 'ख्यात' के रूप मे ही विशेष रही है। 'गीत' वीरो को प्रेरित करने का काव्यगत प्रयत्न था, तो 'ख्यात' उनके वश-गौरव का प्रेरणास्पद इतिवृत्त। ख्यात प्राय गद्य मे लिखी जाने लगी थी। गीत और ख्यात के प्रसग मे चारणो के काव्य को हेय समझने का आग्रह करते हुए नवी शताब्दी मे 'अनर्घराघव' नाटक के कर्ता मुरारि कवि का एक सुभाषित, हरि कवि द्वारा सकलित 'सुभाषित हारावली' मे मिलता है, जिसमे कहा गया है कि 'वाल्मीकि जैसे सस्कृत कवियो से ही 'राम' को यश प्राप्त हुआ, इसलिए हे राजन्, चारणो के गीतो-ख्यातों से लुब्ध होकर प्रात स्मरणीय सस्कृत कवियों की अवगणना मत करो'—

चर्चाभिश्चारणानां क्षितिरमणपरा प्राप्य समोद लीला,
मा कीर्ति : सौविदल्लानवगणय कविप्रातवाणी विलासान्।
गीतं ख्यात च नाम्ना किमपि रघुपतेरद्ययावत्प्रसादात्
वाल्मीकेरेव धात्री, धवलयति यशोमुद्रया रामभद्र ॥

इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि चारणो की तत्कालीन रचनायें अब नष्ट हो गई हैं और अप्राप्य हैं। यद्यपि गीत, दोहे आदि तो बारहवी-तेरहवी शताब्दी से ही मिलने लगते हैं, पर ख्यातें तो सतरहवी से पहिले की ही नही मिलती हैं। प्रसिद्ध चारण ख्यात-लेखको मे 'आसिया बाकीदास' तथा 'सिढायच दयालदास' के नाम उल्लेखनीय हैं।

गीतकार के रूप मे विख्यात दुरसाजी का जन्म सवत् 1592 (सन् 1535 ई०) मे तत्कालीन मारवाड के 'धूदला' गाव मे हुआ बताते हैं। कई लोग सवत् 1595 (सन् 1538 ई०) भी मानते हैं। इनकी मा 'धन्नीबाई' 'बोगसा' शाखा के चारण 'गोविन्द' की बहिन थी। दुरसा के दादा 'अमराजी' के पिता और दादा के नाम क्रमश 'खूमाजी' और 'भीमाजी' थे। अमरा के दो पुत्रों—'मेहोजी' और 'कानोजी' मे मेहोजी दुरसा के पिता थे। एक किवदन्ति के अनुसार एक वर्ष अकाल मे राज्य का कामदार इनके गाव मे अनाज खरीदने आया, जो किसी तकरार के कारण कानोजी के हाथ से मारा गया। इस पर राज्य के कोप से डर कर मेहोजी तथा कानोजी गाव छोडकर परगने सोजत के गाव 'धूदला' मे आ बसे थे। मेहोजी तो यही रह गए तथा कानोजी तत्कालीन आमेर राज्य के गाव 'उणियारा' मे बस गए। एक मान्यता के अनुसार मेहोजी ने अत्यधिक निर्धनता के कारण सन्यास ले लिया और दुरसा की माता ने ही कठिन परिश्रम करके इनका पालन-पोषण किया।

कहा जाता है कि दुरसा के जन्म के समय, जब पुत्रोत्सव का प्रतीक 'थाल' बजाया जा रहा था, तो गुजरात से दिल्ली को जाते एक मौलवी उधर से गुजरे, और उन्होने उस सायत को शुभ देखकर दुरसा के भाग्यशाली होने की भविष्य-वाणी की।

माना जाता है कि बाल्यकाल मे दुरसाजी एक 'सीरवी' किसान के यहाँ नौकर थे। एक दिन उस किसान ने, सिचाई करते समय नाले की मिट्टी बह जाने के कारण, दुरसा को मिट्टी के स्थान पर लिटा दिया और सिचाई करने लगा। उसी समय समीपवर्ती ठिकाने 'बगडी' के ठाकुर उधर आ निकले और वे दुरसा को अपने साथ लिवा ले गए, तथा उनकी शिक्षा का प्रबध किया। 'सूडा' शाखा के इस राजपूत ठाकुर ने दुरसा को होनहार जानकर मारवाड के राव 'मालदेव' से मिलाया। राव मालदेव के प्रभावित होने पर ठाकुर ने 'धूदला' गाव का पट्टा उनके नाम करवा दिया। दुरसा ने उक्त ठाकुर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए निम्न सोरठा कहा है—

माथै मावीताह, जनम तणो कृपावर जितो।
सूडो सुत्र पाताह, पाळणहार प्रतापसी॥

अर्थात्, मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म देकर जो उपकार किया है वैसा ही प्रतापसिंह सूडा ने मेरा पालन-पोषण करके किया है।

मुशी देवीप्रसाद का मानना है कि राव मालदेव के समय बगडी के ठाकुर 'जेताजी' थे, जो सवत् 1600(सन् 1543 ई०) मे शेरशाह से लडकर काम आये, तथा उनके पुत्र 'पृथ्वीराज' और 'देवीप्रसाद' पीछे से राव मालदेव के सेनापति रहे

थे। ऐसी स्थिति मे प्रतापसिंह से सबधित किंवदन्ति तथा उपर्युक्त छद सदेहास्पद प्रतीत होते हैं।

एक दन्तकथा के अनुसार 'चरणी' देवी ने, जो दुरसाजी के कुल मे ही जन्मी थी, अपने विवाह म सम्मिलित नही होने के कारण अपने पीहर वालो को श्राप दे दिया था, जिसमे ग्रस्त होने के कारण 'आढा' गाव को ये लोग छोडने लगे थे। इसी प्रसग मे मेहाजी यहा से चलकर जैतारण गाव मे आए। यहा उन्हें गडा हुआ माल मिला जिससे मकान किराए लेकर रहने लगे। यही किसी जैन यति ने इन्हे विद्याध्ययन करवाया।

विवाह तथा सतति

दुरसा के दो विवाहिता सजातीय स्त्रियाँ तथा एक 'केसरबाई' नामक 'पासवान' थी। विवाहिताओ से 'भारमल', 'जगमाल', 'सादूल', 'कमजी' एव 'किसना' नामक पुत्र हुए। भारमल अधा था तथा इसके पुत्र रूपजी के कारण दुरसा के गृहकलह हो गया। बडे लडका ने दुरसा की समस्त जागीर ले ली तथा दुरसा स्वय किसना के पास रहे। पासवान के पुत्र का नाम 'माधाजी' था। इसे दुरसाजी ने महाराणा अमरसिंह से कहकर 5-6 हजार की वार्षिक आय का 'कागडी' नामक गाव जागीर म दिलवा दिया। एक सौ तेरह वर्ष की आयु मे सवत 1708(सन् 1651 ई०)म, कुछ के अनुसार सवत् 1712(सन् 1655 ई०) मे 120 वर्ष की आयु मे, दुरसा का स्वर्गवास हुआ। इनकी दो स्त्रिया, एक पासवान तथा दो दासिया इनके साथ सती हुई।

दुरसाजी के पर्याप्त लम्बे और घटनापूर्ण जीवन की अनेक मनोरजक कथायें प्रचलित हैं। उनका सारांश देते हुए थोडा परिचय यहा दिया जा रहा है —

1 **दुरसाजी और अकबर**—सवत् 1628 (सन् 1571 ई०) मे बादशाह अकबर गुजरात जाते हुए यहा 'पाली' परगने के 'गूदोज' गाव मे ठहरे। बगडी के ठाकुर दुरसा के साथ यहा मुजरे के लिए हाजिर हुए। इस अवसर पर दुरसा ने अकबर की प्रशसा मे एक छद सुनाया जिससे प्रसन्न होकर अकबर ने इन्हें एक हाथी तथा लाखपसाव' (एक लाख के मूल्य का दान) दिया।

■ **दुरसाजी और बैरामखा**—एक बार दुरसाजी 'पुष्कर' स्नान करने के लिए गए। उस समय अकबर के अभिभावक बैरामखा अजमेर आए हुए थे। दुरसाजी ने उनसे मिलने का प्रयत्न किया, पर बैरामखा के लोगो ने मिलने नही दिया। इस पर उन्हाने युक्ति सोची। एक दिन जब बैरामखा बाहर जा रहे थे तो दुरसा ने उनके मार्ग से थोडी दूर जाकर ये पक्तिया जोर-जोर से पढ़नी प्रारभ की—

'अर्थात्, समरा देवडा ने चारो ही रूपो मे अपना जीवन सार्थक कर लिया। सीरोही के रावो की धरती की रक्षा की, पहाडो को यश प्रदान किया, अपने वशजो को कीर्ति दी तथा शत्रुओं की हानि की।"

राव सुरताण यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हे पालकी मे बिठाकर घर ले गया। कालान्तर मे उन्हे 'पोळपात' बनाकर 'कोडपसाव' का दान तथा 'पेशुआ' और 'साल' नामक दो गाव भी दिए। इस सबध मे यह भी कहा जाता है कि राव ने दुरसा को चार गाव दिए थे जिनमे से दो तो उन्होंने सुप्रसिद्ध 'सारणेश्वर' महादेव के मदिर को अर्पित कर दिए तथा दो स्वय के लिए रखे।

4 मोटा राजा और दुरसाजी—सवत् 1643 (सन् 1586 ई०) मे दुरसाजी जोधपुर के मोटा राजा 'उदयसिंह' के चारण विरोधी कार्यों का विरोध करने के लिए सामूहिक धरने म बैठे थे। परपरा के अनुसार दुरसाजी ने भी अपने कठ मे कटार खाकर मरना चाहा था, पर किसी चारण ने यह कह कर रोक लिया कि आप जीते रहोगे तो कभी किसी बडे मुह से राजा को उलहना दिलवाओगे। तत्पश्चात् दुरसाजी अकबर के दरबार मे गए और वहा उनकी प्रशसा मे गीत पढा। अकबर ने जब पूछा कि तुम्हारी आवाज भर्राई हुई क्यो है, तो उन्होने मोटा राजा की ओर इशारा करके कहा कि यह सब इनकी कृपा है। कहते हैं कि सारा वृत्तात सुनकर बादशाह ने मोटा राजा के कार्य को अनुचित बताया।

5 बारहठ लक्खा और दुरसाजी—बारहठ लक्खा अकबर के कृपा-पात्र थे। उन्होने दुरसाजी को शाही कृपा दिलवाने मे मदद की थी। इस उपकार की भावना से दुरसाजी ने उनकी प्रशसा मे यह दोहा कहा था—

दिल्ली दरगह अब तरु, ऊचो घणो अपार।
चारण लक्खा चारणा डाळ नमावणहार॥

"दिल्ली के दरबार मे कृपा रूपी आम का पेड बहुत ऊचा है। चारणो के लिए उसकी डाली को झुकाने वाला लाखा चारण ही है।" इस पर लाखा ने सारा श्रेय भगवती करणी को ही देते हुए यह प्रत्युत्तर कहा—

दुरसा डूगरडेह, कुण काला छाया करै।
आढा आपाणेह, महर करीजे मेहवत॥

"दुरसा, डूगरो (पर्वतो) पर छाया कौन करता है! हे आढा गोत्र के वशज, अपने (चारणो) पर तो भगवती करणी ही की कृपा है।"

6 महाराणा अमरसिंह से सपर्क—कहा जाता है कि अपने स्वर्गीय पिता महाराणा 'प्रताप' से प्रेरणा पाकर अमरसिंह ने दुरसाजी को अपने यहा बुलवाया और 'रायपुरिया' नामक गाव के साथ 'कोडपसाव' भी दिया। 'मोढवाड' परगने का यह गाव दुरसाजी ने, उदयपुर जाते समय उक्त गाव के चौधरियो की राय

मानकर, मागा था। सबंधित छद का एक चरण इस प्रकार है—

"नेडो ■ जावू नवकोटी, राण दिए तो रायपुर"

"अर्थात्, राणाजी यदि मुझे रायपुरिया दे दें तो मैं नवकोटी मारवाड के नजदीक हो जाऊ।" एक अन्य पक्ति—'क्षत्रिया कुळ लहणो छोडायो, राज दियता रायपुर" मे रायपुर के दान से क्षत्रियो पर चारणो के ऋण से उऋण होने की बात कही गई है।

कहते हैं एक बार दरबार मे बैठते समय दुरसाजी नीचे गिर गए थे, जिस पर महाराणा ने स्वय 'खम्मा खम्मा' (क्षमा-क्षमा) कहते हुए उन्हे उठाकर बैठाया था। इस अवसर पर भी दुरसाजी ने 'दुठाडियो' नामक गाव उनसे प्राप्त किया था, जिस सबध की पक्ति इस प्रकार है .."खमा खमा करि उठाडियो, तो दे राजा दुठाडियो।"

7. मोहब्बतखान से सबध—कहा जाता है कि मोहब्बतखान (महाबतखा) ने दुरसा को एक लाख रुपये वार्षिक देना बाध दिया था। वृद्धावस्था के कारण दुरसाजी स्वय दिल्ली नही जा सके और अपने छोटे पुत्र किसना को ही अजमेर मे खान के पास भेज दिया। खान ने मजबूरी बताई और कहा कि अजमेर मे पैसे कहा है। इस पर दुरसाजी खुद आकर मिले और एक छद कहा, जिसकी एक पक्ति इस प्रकार है—

"तू ज्या ही दिल्ली तखत, खान मोहब्बतसीह।"—

इससे प्रसन्न होकर खान ने वही रकम का प्रबध करवा दिया।

8 जोधपुर महाराजा गजसिंह द्वारा सम्मान—कहते हैं कि 'रायपुरिया' मे हवेली बनवाने के लिए दुरसाजी 'सोजत' से पत्थर मगवाते थे। एक बार महाराजा गजसिंह जब सोजत मे थे, तो गाडिया देखकर पूछताछ की और गाव 'पाचेटिया' मे डेरा करके दुरसाजी को बुलवाया। जब महाराजा ने उन्हे साथ चलने को कहा तो वे बोले कि 'आउवा' के धरने मे अक्खाजी बारहठ, जो समझाने आए थे, तो मर गए और मैं जीता रहा, इसी लज्जा से मारवाड मे नही जाता। कहते है कि महाराजा ने उन्हे क्षमा कर दिया तथा उनके पुत्र किसनाजी को साथ ले गये और परगने सोजत का गाव पाचेटिया सवत् 1677 (सन् 1620 ई०) मे उन्हे दिया। सवत् 1679 (सन् 1622 ई०) मे परगने जोधपुर का 'हीगोला' नामक गाव और दिया गया।

9 दुरसाजी और सत कवि रज्जब—राघवदास कृत 'भक्तमाल' मे आए एक प्रसग के अनुसार दुरसाजी बादशाह से प्राप्त पालकी, सोने का अकुश तथा सोने की छडी लेकर दिग्विजय के लिए निकले। उनका प्रण था कि जिसे शास्त्रार्थ मे जीत लेंगे उसे पालकी मे जोतेंगे, तथा जिससे हार जायेंगे उसे बादशाह से प्राप्त सम्मान-सामग्री दे देंगे। इसी प्रसग मे वे 'जयपुर' के पास 'सागानेर' मे आए और

सत कवि रज्जबजी से चर्चा करते हुए उन्होंने यह छद कहा—

बावन अक्षर, सप्तस्वर, वठ भाषा छत्तीस।
इनमे ऊपर जो कहे, सो जानू कवि ईस॥

रज्जबजी ने इसके प्रत्युत्तर मे निम्न दोहा कहा—

बावन अक्षर, सप्त स्वर, वठ भाषा छत्तीस।
इनसे ऊपर हरिभजन, रज्जब कही हदीस॥

कहते है इस पर निरुत्तर होकर दुरसाजी ने समस्त सामग्री रज्जबजी को भेंट कर दी तथा उन्हे अपना गुरु बना लिया।

10 सिरोही के 'अखैराज' द्वारा सम्मान—कहते हैं सवत् 1699 (सन् 1642 ई०) मे जब दुरसाजी सिरोही गए तो अपने पौत्र 'महेस' को अफीम का सेवन करते देखकर क्रुद्ध हो गए और राव अखैराज के लिए कहा कि इसके हाथ मे 'ठीकरा' (मिट्टी का पात्र) पकडाकर बडी कृपा की है। इस पर राव ने महेस को सिरोही के सिंहासन पर बैठाते हुए दुरसाजी से कहा कि हमारे तो यही 'ठीकरा' है। दुरसाजी बडे प्रसन्न हुए और यह दान अस्वीकार कर दिया। बाद मे अखैराज ने महेस को 'विरायली' तथा 'ऊड' नामक दो गाव और दो 'लाखपसाव' दिए।

11 अन्य ऐतिहासिक व्यक्तियो से सबध—दुरसा ने अनेक वीरो और नरेशो के विषय मे काव्य-रचनायें की और उनसे दानादि भी प्राप्त किए। उन नामो म से कुछ अन्य प्रमुख व्यक्ति निम्न प्रकार हैं—

1 राव अमरसिंह गजसिहोत
2 रावत मेघा
3 कुमार अज्जा
4 सोलकी वीरमदे
5. महाराजा मानसिंह कछावा
6 रोहितासजी
7 देवीदास जैतावत
8 हाथी गोपालदास
9 महाराजा पृथ्वीराज राठौड। इनके अतिरिक्त वे स्वरचित शताधिक डिंगल गीतो के अन्य अनेक नायको के भी निकट सपर्क मे रहे थे।

जिन विशिष्ट व्यक्तियो के उल्लेख दुरसाजी ने सम्मानपूर्वक किये हैं, वे हैं राव 'रायसिंह', 'गोपाल माडणोत', तथा महावतखान। इस प्रसग का दुरसाजी के विषय मे कहा छद इस प्रकार मिलता है

आघो अघराजियो राव सोजत मे राखै
रायसिघ कुळरूप जको बाबा कहि भाखै

माडण रो गोपाल, वडो ठाकुर वरदाई
पलटी सिर पागडी, कहू यो निज मुख सू भाई
मान सो खान महोवत मिलै, छत्रपती चाहै घणा
वडभाग वाह पाळक वरण, तू दुरसा मेहा तणा

"सोजत का राव रायसिंह, आधे राज्य का स्वामी-सा बना, सोजत मे "बाबा" कहकर बतलाता है। माडण का पुत्र गोपाल, जो वरदायक बडा ठाकुर है, पगडी बदल भाई बन गया है। मोहब्बत खान सम्मानपूर्वक मिलता है। दूसरे अनेक छत्रधारी राजा भी बहुत चाहते हैं। चारण वर्ण की पालना करने वाला मेहा का पुत्र दुरसा बडा भाग्यशाली है।"

विशिष्ट दान और जागीरें

कहा जाता है कि दुरसाजी को नौ 'कोडपसाव' मिले थे जिनमे से तीन बादशाह अकबर से, एक सिरोही के राव सुरताण से, एक बीकानेर के महाराजा रायसिंह से, एक महाराजा अमरसिंह से तथा एक 'जामनगर' के जाम सत्ताजी से मिला। इसके अतिरिक्त धूंदला (मारवाड) पाचेटिया (मारवाड), नातल कुडी (मारवाड) हीगोला (मारवाड), पेशुआ (सिरोही), झाकर (सिरोही) ऊड (सिरोही), साल (सिरोही), लूगिया (सिरोही) 'दागला, (सिरोही), रायपुरिया (मेवाड), दुठाडिया (मेवाड) और कागडी (मेवाड) नामक गाव भी इन्होने प्राप्त किए। इनके अतिरिक्त अनेक लाखपसाव तथा दूसरे पुरस्कार भी प्राप्त किए।

दुरसा के किए परोपकार एव निर्माण

दुरसा ने दानादि मे प्राप्त अपार धन राशि से परोपकार के अनेक कार्य किए जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं

(1) आबू पर्वत पर अचलेश्वर महादेव के मदिर मे दानादि के अवसर पर अपनी दो पीतल की मूर्तिया वहा स्थापित की, जिनपर उनके नामो का उल्लेख है। अनेक विद्वानो ने इसकी सत्यता प्रमाणित की है।
(2) अपने जागीरी गावो—पशुआ तथा पाचेटिया मे 'दुरसोळाव' तथा 'किसनळाव' नामक तालाब स्वय के तथा छोटे पुत्र किसना के नाम से बनवाए।
(3) 'पाचेटिया तथा' 'हीगोला' मे आवास-गृह बनवाए।
(4) पेशुआ मे बालेश्वरी देवी का एक तथा पाचेटिया मे दो मदिर बनवाय।
(5) रायपुरिया तथा दुठाडिया मे बावडी, अरहट एव कुए बनवाये।
(6) चारणो को कोडपसाव का दान स्वय दिया।
(7) पुष्कर मे चारणो का एक मेला आमत्रित कर चौदह लाख रुपए व्यय किए

विरच्यो प्रबध वरण्णरो, सूरज शशियर साख।
तठै खरच दुरसा तणा, लागा चवदा लाख॥

"सूर्य चद्र की साक्षी से दुरसा ने चारणो का प्रबध किया जिसमे चौदह लाख लगे।"

दुरसाजी की यह सास्कृतिक परपरा उनके पुत्रों-पौत्रों ने भी बनाई रखी। उनके पुत्र किसना के लडके महेस ने दुरसाजी के समय मे ही पाचेटिया मे दो भव्य मदिर बनवाकर उनमे दुरसाजी तथा किसनाजी की मूर्तिया भी स्थापित की।

दुरसा का स्वर्गवास

इस प्रकार एक लबा और यशस्वी जीवन जीकर दुरसा ने पाचेटिया मे देह-त्याग किया। कहते हैं कि जब इनके साथ इनकी स्त्रिया, पासवान तथा दासिया सती हो रही थी तो राह चलती एक 'रैबारी' जाति की स्त्री के भी 'सत' चढ गया और वह यह कहते हुए इनके साथ ही सती हो गई कि ये मेरे पूर्व-जन्म के पति थे।

यद्यपि दुरसाजी की मृत्यु सवत् 1708 (सन् 1651 ई०) मे मानी जाती है, पर मुशी देवीप्रसाद ने पाचेटिया गाव मे बनी इनकी छतरी पर उत्कीर्ण एक लेख का हवाला देते हुए इनकी मृत्यु सवत् 1699 (सन् 1642 ई०) से पूर्व मानी है।

दुरसा द्वारा अन्य लोगो के विषय मे कहे गए तथा दूसरे लोगों द्वारा स्वय दुरसा के लिए कहे गए कई रोचक प्रसगो के छद मिलते हैं, जिनमे से कुछ यहा उद्धृत किए जाते हैं

1. बारहठ लक्खा द्वारा दुरसाजी के लिए कहा गया दोहा—

   माय चराया केरडा, बाप फडाया कन्न।
   दुरसो आढो भूलगो, वो अन है यो अन्न॥

   "तुम्हारी मा ने बछडे चराए और तुम्हारा बाप कान फडवाकर सन्यासी बन गया। दुरसा, तुम भूल गए हो कि यह अन्न वही है, जो तुम्हे दुर्लभ था।"

2. दुरसा ने 'भीमा आसिया' नामक कवि द्वारा दिए गए एक भोज के अवसर पर उसकी प्रशसा की तो उसके पुत्र किसना ने उन्हे मना किया। इस पर दुरसा ने निम्न दोहा कहा

   किसना ससारो कहै, बूठा मेहा बत्त।
   भीमा नै कहता भलो, मोनै वरजै मत्त॥

   "बरसते मेह की बात तो सारा ससार ही कह उठता है। किसना, भीमा की प्रशसा करते हुए मुझे रोक मत।"

3 पृथ्वीराज राठौड कृत 'वेलि किसन रुकमणी री' नामक सुप्रसिद्ध काव्य की

प्रशसा मे निम्नलिखित छद दुरसा द्वारा कहा बताया जाता है—

रुखमणि गुण लखण रूप गुण रचवण
वेल तास कुण करै वखाण।
पाचवो वेद भाखियो पीथल
पुणियो उगणीसमो पुराण ॥

"रुक्मिणी के गुणो और रूप का वर्णन करने वाले पृथ्वीराज के वेलि नामक ग्रथ की रचना का कौन वखान करे ! उसने पाचवा वेद और उन्नीसवा पुराण ही कह डाला है।"

दुरसा को महाराणा प्रतापसिह की प्रशस्ति मे लिखित 'विरुद्ध छिहत्तरी' नामक ग्रथ का रचयिता मानकर राष्ट्रकवि के रूप मे प्रतिष्ठित करते हुए अनेक लेखकों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। इस सदर्भ मे उनके प्रामाणिक जीवन-वृत्त की खोज की जानी आवश्यक है, ताकि इतिहास का सत्य उजागर हो सके।



अध्याय 2

तत्कालीन राज और समाज

दुरसा आढा ने अपनी अपेक्षाकृत लम्बी जीवनावधि मे मुगल सम्राट् अकबर से लेकर शाहजहा तक के सुदीर्घ काल को देखा था। मुगल सम्राटो का यह समय मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास के लिए बडा महत्वपूर्ण समझा गया है। अकबर ने राजपूत वशो से विवाह-सबध स्थापित कर जिस नीति को जन्म दिया था, वह शाहजहा के शासन-काल तक सम्राटो के लिए बडी लाभप्रद सिद्ध हुई। शाहजहा के अतिम दिनो मे औरगजेब ने उसमे बडा परिवर्तन कर दिया, जिससे राजपूतो और मुगलो के बीच दूरिया बढती गईं और उसका अतिम परिणाम मुगल साम्राज्य के पतन के रूप मे प्रकट हुआ।

राजस्थान अति प्राचीन काल से ही छोटे-छोटे राज्यो मे बटा रहा है। ये स्थानीय शासक केन्द्रीय सत्ता या प्रबल पडोसी से कुछ समय के लिए पराभूत होकर अधीनता स्वीकार तो कर लेते थे, पर समय पाकर पुन अपना वर्चस्व जमाने की चेष्टा करते थे। गुजरात, मालवा और दिल्ली के प्रभुता-सम्पन्न सुल्तानों की सत्ता निरतर परिवर्तनशील रहने के कारण भी विशेष लम्बी अवधि के लिए उनकी अधीनता स्वीकार नही की गई। गुहिल, सोलकी, परमार, प्रतिहार, चौहान आदि शक्तिशाली राजवशो के अतिरिक्त माडू, गुजरात और दिल्ली के सुल्तानो ने अपने-अपने समय मे काल-विशेष के लिए अपना वर्चस्व अवश्य स्थापित किया, पर मुगलो से पूर्व ऐसी कोई सुनियोजित नीति नही अपनाई गई जिससे राजस्थान के स्थानीय शासक केन्द्रीय सत्ता से इस प्रकार जुड पाते। इन शासको को सगठित कर पाना भी बडा दुष्कर था। राणा सागा ने बाबर के विरुद्ध लडे गए खानवा के युद्ध मे इनका आह् वान अवश्य किया था, पर दुर्भाग्यवश उस युद्ध मे विजयश्री मुगलो को मिली। मारवाड मे भी राव मालदेव ने अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर शेरशाह के छक्के छुडा दिये थे, पर उसमे सगठन-शक्ति का अभाव था। मेवाड के राणा तो प्राचीन काल से ही हिन्दू नरेशो के अग्रगण्य रहे हैं, अत उनका साथ देने मे नरेशो ने जिस गौरव का अनुभव किया,

वह सम्मान अन्य किसी राजवश को नही दिया जा सकता था। इस अह के पीछे राजवशो मे परम्परागत वैमनस्य और स्वय के जातीय गौरव की दुर्निवार भावना कारणभूत थी।

सम्राट् अकबर ने इस स्थिति का सही अनुमान लगाकर, तथा तत्कालीन स्थानीय शासको की गिरती हुई आर्थिक स्थिति का लाभ लेकर, उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की नीति अपनाई। उसके साथ ही उसने सभी राजपूत शासको एव उनके कुमारो को शाही सेना मे भर्ती कर उन्ह उपयुक्त मनसब भी प्रदान किए। इस नीति के दो लाभ हुए। एक तो यह कि वे नरेश अपने आपको सम्राट् के सम्बन्धी और निकटवर्ती मानने लगे, तथा दूसरा यह कि, अपने राज्यो से दूर शाही सेवा मे निरतर युद्धो मे लगे रहने के कारण, वे अपने पडोसियो से लडने का अवसर नही ढूढ पाए। मुगल हरम मे गई राजकुमारियो ने अपने बाप-दादाओ को बादशाही कृपा के पात्र बनाने के यत्न किए और स्वय नरेशो ने भी सुदूर के युद्धो मे लूट के माल से अपनी माली हालत सुदृढ की। मनसबो के वेतन आदि भी पर्याप्त उदार होने के कारण उनके अधीनवर्ती सरदार, सामत और बहुसख्यक सैनिक भी सम्पन्न बनन लगे। यह सम्पन्नता मुगल काल मे बने किलो, महलो, गढियो, हवेलियो, बागो तथा अन्य अनेक आवास गृहो आदि मे परिलक्षित होती है।

मुगलो द्वारा समस्त भारतवर्ष को ही नही अपितु अफगानिस्तान आदि मुस्लिम देशो को भी अपने अधीन करने की सतत चेष्टा मे राजपूत वीरो ने बहुत बडा योगदान किया। राजपूत नरेशो मे सम्राटो की कृपा प्राप्त करने की एक होड सी मच गई जिससे उन्होंने अद्भुत पराक्रम प्रदर्शन करने मे एक दूसरे को पीछे धकेल दिया। राजपूतो का यह शौर्य मुगल साम्राज्य के विस्तार मे बडा सहायक सिद्ध हुआ। दूसरी ओर राजपूत वीरो को भी, तलवार तीर-भाले-कटार आदि परपरागत अस्त्र-शस्त्रो के अतिरिक्त बदूक, तोप, नाल आदि नए आविष्कारो मे भी महारत हासिल हुई।

इस प्रकार लम्बे समय तक मुगल सम्राटो एव उनके 'अमीरो-खानो-नवाबो' के निरतर सम्पर्क मे रहने के कारण देशी नरेशो ने मुगल शान-शौकत और जीवन पद्धति को पर्याप्त मात्रा म अपना लिया। वेश भूषा, अस्त्र-शस्त्र, बोल-चाल, युद्ध कौशल, रहन सहन, दरबारी शिष्टाचार आदि सभी पक्षो मे मुगल प्रभाव स्पष्टत दृष्टिगोचर होने लगा था। अखिल भारतीय स्तर पर दूसरे नरेशों, अमीरों आदि से सम्पर्क होने, तथा विभिन्न प्रदेशो मे सेवा करते रहने से भी, राजस्थानी नरेशो के दृष्टिकोणो मे व्यापकता आई और अनुभव मे वृद्धि हुई। तुलनात्मक दृष्टि से, अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न एव समृद्ध प्रदेशो के इस सम्पर्क से जीवन के प्रति उनकी लालसा मे भी वृद्धि हुई। मुगलो के वैभव मे भागीदार

होने के लिए उनकी कृपाओ की याचना करते हुए देशी नरेशो ने प्रभावशाली *मुगल अमीरो को भेंट, घूस आदि देना भी प्रारंभ किया।*

इधर उनके अपने राज्यो मे भी उनकी प्रभुसत्ता मे वृद्धि हुई। जो सामत पहिले राज्य मे बराबर के भागीदार बनने का दावा रखते थे, तथा समय-समय पर अपने वर्चस्व का प्रदर्शन भी करते थे, वे केन्द्रीय सत्ता के भय से राज्य के प्रति अधिक स्वामिभक्त बनने लगे। पर स्वय निरतर शाही सेवा मे रहने के कारण राज्य की देख-रेख प्राय वैश्य-वर्ग के दीवानो, मुसाहिबों के हाथो मे दे दी गई, जिससे धीरे-धीरे राज-परिवारो के घरेलू मामले भी उक्त वर्ग की दखल-दाजी के विषय बनने लगे। इस निहितस्वार्थं तत्त्व ने राजकीय सत्ता एव कोप के बल पर अपने प्रभुत्व और समृद्धि मे वृद्धि की तथा राज्यो की शोचनीय आर्थिक स्थिति की ओर कोई ध्यान नही दिया।

राजघरानो के अत पुर आतरिक कलह से ग्रस्त होने लगे। पहिले सीमित सख्या मे ही विवाह होने तथा परम्परागत मर्यादाओ का निर्वाह होते रहने के कारण, अत पुर मे जो अपेक्षाकृत शाति थी वह मिटने लगी थी। इसका एक *कारण तो मुगल शासकों द्वारा प्रोत्साहित बहुपत्नीत्व की प्रथा थी,* जिससे राज-स्थानी नरेशो ने भी अनेक विवाह करने की परम्परा को बहुत अधिक बढा दिया, जिसका स्वाभाविक परिणाम आतरिक कलह मे परिलक्षित हुआ। दूसरे, उत्तरा-धिकार को लेकर भी ये सघर्ष अधिक खिचते गए। उत्तराधिकार की जो व्यव-स्था, भारतीय धर्म-शास्त्र के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र के लिए की जा रही थी, उसमे भी केन्द्रीय सत्ता का हस्तक्षेप बढता गया और टीके का दस्तूर बादशाह के निर्णय के ही वशीभूत हो गया। देशी नरेशो ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए अपनी चहेती रानिया के पुत्रों को येनकेन प्रकारेण उत्तराधिकार दिलाने के प्रयत्न किए। ऐसे प्रयत्नो मे मातृपक्ष के राजघराने भी उलझने लगे जिससे केन्द्रीय राजनीति मे भी एक से अधिक दल बनने लगे।

मदिरा, अफीम, शिकार और स्त्रियो के बढते आकर्षण ने राज परिवारो के पुरुषों को शिक्षा और सस्कृति के विषयों से पृथक् सा ही रखा। विरुदगायकों की चाटुकारिता से प्रभावित होकर मुक्तहस्त से दान देने म उन्होने अपनी आर्थिक स्थिति का सही अनुमान तक नहीं लगाया, जिससे वे निरतर ऋणग्रस्त रहने लगे अथवा दूसरी प्रकार से तगी का अनुभव करने लगे।

रानिया, महारानिया, राज मातायें आदि समयानुसार अपने घटते वर्चस्व के प्रतिक्रियास्वरूप, धर्म-कर्म मे आस्थावान होती गईं और व्रत-उपवास, कथा-भागवत, भजन पूजन आदि मे अपना समय बिताने लगी। इसका एक शुभ परि-णाम उन बहुसख्यक मदिरो के रूप मे प्रतिफलित हुआ जो राज-परिवारो की महिलाओ ने समय समय पर बनवाये। इस होड मे राजाओ की पासवानें, पड-

दायतें और वादियां भी पीछे नही रही। इन्ही महिलाओ की धार्मिक प्रवृत्ति के कारण सत एव भक्ति साहित्य की बहुत बडी सामग्री राजकीय पोथीखानो मे उनके गुटको के रूप मे सुरक्षित रह पाई। नाथ-पथ, निर्गुणी सतो तथा निम्बार्क एव वल्लभ-सम्प्रदायो को राजपरिवारो से निरतर प्रश्रय इन्ही महिलाओ के कारण प्राप्त हुआ। जैन धर्मावलम्बी वैश्य वर्ग के दिन-प्रतिदिन बढते प्रभाव के कारण नरेशो ने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार मे भी बाधा नही डाली और वन पडता सहयोग भी दिया। हिन्दू राज्यो की प्रश्रय की यह नीति पिछली कई शताब्दियो से चली आ रही थी। मुगल सत्ता के जड पकड जाने के कारण मस्जिदो, दरगाहो तथा मुसलमानो के अन्य धार्मिक स्थानो को अधिक सम्मान, श्रद्धा और महत्त्व मिलने लगा। पर यह सब होते हुए भी बहुसख्यक हिन्दू पर्व-त्यौहार—दशहरा, दीवाली, होली, तीज, गणगौर आदि ही राजकीय उत्सव बने रहे जिनमे स्वय नरेश लवाजमे के साथ सम्मिलित होते। राजकीय दरबार भी ऐसे ही अवसरो पर आयोजित किए जाते। अकबर ने भी धार्मिक सहिष्णुता की नीति ही अपनाई और सभी धर्मों को बिना किसी रोक-टोक के अपनी मर्यादाओं का पालन करने दिया। स्वय उसकी विवाहिता हिन्दू रानिया भी हरम मे अपने देवी-देवताओं की पूजा-आराधना कर सकती थी। जहागीर तथा शाहजहा ने भी इस नीति में कोई अतर नही आने दिया, जिससे धार्मिक कटुता उभरने नही पाई।

आलोच्य काल मे चारण कवियो का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढने लगा और उन्हें 'लाख पसाव', 'कोड पसाव' आदि दान दिए जाने लगे जिनमे गावो के 'सासण' भी सम्मिलित थे। इससे ब्राह्मण समाज को दिए जाने वाले दानो मे कमी आई और वह केवल धार्मिक कृत्यो की प्रतिष्ठार्थ दिए गए दानो के ही अधिकारी रह गए। काव्य, साहित्य, आयुर्वेद, ज्योतिष, तत्र मत्र, सगीत आदि विद्याओं एव कलाओ को सामान्य रूप से राज्याश्रय तो था, पर चारण कवियो के बिरद-काव्य का प्रचलन अधिक होता गया और वे राजपूत नरेशो सामतो-ठाकुरो के साथ भाईचारे का दावा करने लगे। इसके पीछे कुछ चारणी महिलाओ की मान्यता का भी प्रभाव था जिन्हे शक्ति के अवतार रूप मे प्रचारित एव प्रतिष्ठापित किया गया। इन देवियो की सिद्धियों और वरदानो की अनेक गाथायें तत्कालीन समाज मे बडे विश्वास और श्रद्धा के साथ कही-सुनी जाने लगी थी। साधारण गृहस्थ परिवारो मे जन्मी इन चारणी देवियों की एक लम्बी परपरा चारण समाज मे चली आई है और विज्ञान के इस युग म आज भी ऐसी देविया श्रद्धा की पात्र समझी जाती हैं। प्राय सभी राजपूत वशो मे एक-न-एक ऐसी किसी चारणी देवी की मान्यता चली आई है। 'चारणों' के इस अभ्युदय से उन्होंने अपने आपको राजपूत समाज के रीति रिवाजों और अन्य सभी शिष्टा-

चारो मे ढाल लिया और स्वय को राजपूतो के समान स्तर पर समझना प्रारभ कर दिया। विवाहादि अवसरो पर दान के लिए हठ करने और सामूहिक सत्या-ग्रह, धरने आदि द्वारा राजपूतो को तदर्थ विवश करने की नीति भी उन्होंने अप-नाई। उनके अनुकूल नही बनने वाले राजपूतों की निन्दा करने की चेष्टायें भी की गईं। चूकि चारण आजीविका के लिए पर्याप्त भ्रमण-शील रहते थे, अत उनके जन-सम्पर्क से निन्दा-प्रसगो को बढावा मिलने के भय से राजपूतो को उन्हे तुष्ट करने को भी बाध्य होना पडता था। लेकिन ऐसे चारण विद्वानों की भी कमी नही थी जो सत्य, धर्म, शौर्य और दूसरे वीरोचित एव क्षत्रियोचित गुणो के उत्कर्ष को प्रोत्साहित करते थे। ऐसे विद्वानो को सभी पूर्ण सम्मान की दृष्टि से देखते थे। ऐसे ही कुछ चारण कवि युद्धो मे भी राजपूतो का साथ देते थे तथा अवसर पडने पर कधे से कधा लगाकर स्वय युद्ध भी करते थे। गौ ब्राह्मण-अबला को अवध्य मानने वाले प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुसरण पर चारण भी अवध्य समझे जाते थे। अत पता पडने पर या तो क्षत्रिय स्वय इन्हे जीवित छोड देते थे अथवा कभी-कभी ये स्वय प्राण-याचना करके बच जाते थे।

हरेक ऊची जाति के यहा याचना करने वाली कोई न कोई नीची जाति की परपरा बनी रही है। इसलिए चारणों की भी अपनी याचक जातिया खडी हुईं। जिस प्रकार चारण राजपूतों के यहा याचक बनकर दान, नेग वगैरह लेते थे, उसी प्रकार चारणो के यहा 'मोतीसर' तथा 'रावल' जाति के लोग याचक बन-कर आते थे। ये याचक भी चारणों की तरह काव्य-रचना करते थे। कई 'मोती-सर' ऊचे दर्जे के कवि हो गए हैं। 'रावल' लोग भी अच्छी रचनायें कर पाते थे, क्योकि डिंगल काव्य कुछ रूढियो मे बधकर रह गया था। इन मोतीसरो, रावलो को चारण लोग भी उसी प्रकार दानादि से प्रसन्न करते थे जिस प्रकार वे स्वय राजपूतो से प्राप्त करते थे। जो सम्मान चारणो का राजपूत घरो मे होने लगा था वैसा ही चारण मोतीसरो तथा रावलो को देने लगे थे। इससे भी चारणो द्वारा राजपूत वर्ग की समानता करने की प्रच्छन्न भावना प्रकट होती है।

चारणों के समकालीन ही, अपितु कुछ अर्थों मे उनकी पूर्ववर्ती भी, एक और काव्यकर्मी जाति थी, भाटो-रावो-कवीश्वरो की। ये लोग अपनी रचनायें ब्रज-भाषा से मिलती-जुलती भाषा मे करते थे, जो पिंगल के नाम से जानी जाती थी। *इनकी प्रतिस्पर्धा मे चारणों की भाषा 'डिंगल' के नाम से प्रसिद्ध हुई।* डिंगल-पिंगल का साहित्यिक द्वन्द्व भाट-चारणो के व्यावसायिक सघर्ष के कारण चला। पूर्वी तथा दक्षिणी राज्यो मे भाटो का प्रभुत्व अधिक रहा जब कि उत्तरी एव पश्चिमी क्षेत्र मे चारणो का। कालातर मे चारणो ने भाटो की तुलना मे अपना वर्चस्व बढ़ा लिया।

वैश्य वर्ग में एक और समुदाय प्रभावशाली बनने लगा था जो व्यवसाय करने के अतिरिक्त शासकों के भी निकट सम्पर्क मे था। ये लोग प्राय जैन धर्मावलम्बी थे और 'ओसवाल' के सामान्य नाम से जाने जाते थे। इनमे से अधिकाश की उत्पत्ति राजपूत कुलो से मानी जाती है। इनका रहन-सहन, वेश-भूषा, उठ-बैठ, बोल-चाल आदि सभी उच्चकुलीन राजपूतो के समान था। जैन धर्म मे दीक्षित होने के कारण मास-मदिरा का सेवन इनके लिए वर्जित था। देशी रियासतों मे ये लोग उच्च पदासीन रहते थे। चारण लोग इनके विरद भी बखानते थे। दूसरी चारणेतर जातिया भी इनकी याचक थी। वैश्य होते हुए भी ये लोग युद्धो में भाग लेते थे और सेनानायकत्व भी करते थे।

इस सामती और पूजीवादी ढाचे के अनुरूप ही अन्य मध्यवित्त के लोग अपने आपको ढालने का प्रयत्न करते थे। पुरोहित वर्ग भी सामतो और धनिको की कृपा का आकांक्षी बना रहता था। अध्ययन-अध्यापन, कर्म-काड, भजन-पूजन, दान-दक्षिणा आदि के द्वारा तो वह अपनी रोटी का ही जुगाड कर पाता था। कृषको और कर्मकरों के बहुसख्यक वर्ग की दशा शोचनीय ही थी। उन्हे उनके श्रम का समुचित प्रतिफल नही मिल पाता था। आये वर्ष पडने वाले अकालो से कृषक वर्ग की आर्थिक स्थिति कभी स्थायी रूप से सुदृढ नही बन पाती थी। सिंचाई के अभाव मे वर्षा के भरोसे ही अधिकाश कृषि-कार्य चल पाता था। कृषको तथा कर्मकरो से बेगार लेने की प्रथा पूरे जोर मे थी। उच्च कुलों मे दास-दासियो के रूप मे अथवा जीवनपर्यन्त मजदूरो के रूप मे कार्य करने के लिए विवश परिवारो की सख्या बढती जा रही थी।

राजपूत वर्ग की देखादेखी दूसरे सम्पन्न वर्ग भी उपपत्निया और रखैलें रखते थे जिससे अवैध संतानों का एक नया वर्ग खडा हो गया था। 'दरोगा' या 'गोला' कहे जाने वाले ये लोग पीढियो तक दासो के रूप मे दहेज आदि मे दिये-लिये जाने लगे थे। उनके साथ अमानुषिक व्यवहार की घटनायें भी घटित होती थी। राजपूतो की विधवा स्त्रियो को जब सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारणों से सती के रूप मे जलने को विवश होना पडता था तो अनेक बार इन दास-दासियो को भी जला दिया जाता था। 'पातरो' का एक और वर्ग भी था जो राजाओ के भोग-विलास के लिए भर्ती की जाती थी। इनके नए नामकरण शृंगारिक भावना से किए जाते थे, यथा—रगराय, रूपरेखा, रसतरग आदि। इनके समान ही 'गायणिया' भी भर्ती की जाती थी जिनका काम राज-परिवार के लोगो का गायन के द्वारा मनोरजन करना था। पर अनेक बार इन गायणियों पर भी राजा की नजर पड जाती तो ये उपपत्नियो की तरह रहने लगती। असल मे यौन सबधो को लेकर राजाओ के लिए कोई रोक-टोक नही रह गई थी। वे किसी भी जाति या वर्ग की स्त्री को बिना हिचक के अन्त पुर मे डाल सकते थे अथवा

किसी प्रकार अपनी यौन-तुष्टि के लिए विवश कर सकते थे। ऐसी बहुसख्यक पातरें व अन्य दासिया भी मृतक राजा के साथ जला दी जाती थी।

अन्त पुरो म काम करने के लिए मुगल हरमो के अनुकरण पर 'नाजर' भी रखे जान लगे थे जो समय पाकर उच्च पदो पर भी आसीन हुए। कुमारावस्था मे ही बालको का 'नाज़र' बनाने के उद्देश्य से नपुसक बनाने का व्यवसाय चल पड़ा था जिसे रोकने की बहुत कुछ चेष्टा स्वय जहागीर ने भी की थी। स्वामि-भक्ति के प्रदर्शनार्थ ऐसे नाजर भी चिताओ मे जलाये गए, ऐसे दृष्टात मिलते हैं।

अनियत्रित भोग-विलास के इन कार्यों के लिए पर्याप्त मात्रा मे साधन जुटाने के लिए जनसाधारण पर भाति भाति के कर एव लाग बाग आरोपित किए गए जिनसे उनकी आर्थिक स्थिति और अधिक शोचनीय हो गई। राजा की तरह ही छोटे सामत भी इसी प्रकार का आचरण करने को प्रेरित हुए और छोटे-छोटे जागीरी गावो म स्थिति और भी बदतर हो गई। अधिक आवश्यकता होने पर छुटभाई लोग गावो को लूटने मे भी नही हिचकते थे और ऐसा करने को वे क्षत्रिय-धर्म का पालन कहकर ग्रास' की सज्ञा देते थे। युद्ध, राज-परिवार म विवाह, पुत्र-जन्म आदि विशिष्ट अवसरो पर विशेष प्रकार के अन्य कर तथा लाग-बागें भी ली जाती थी।

उच्च एव निम्न वर्ग के बीच इतने विशाल अतर को देखते हुए जनसाधारण के शैक्षणिक एव सास्कृतिक विकास की कल्पना भी नही हो सकती थी। शिक्षा की सुविधा भी शहरी मध्यवित्त के लोगो तक ही सीमित थी। तथाकथित उच्च एव कुलीन वर्ग के लिए तो मनोवाछित शैक्षणिक व्यवस्था हो ही सकती थी, पर अन्य लोग इससे वचित ही रहते थे। उन्हे जीवन यापन के लिए परपरागत पारि-वारिक व्यवसायो मे ही लगना पडता था। स्त्रियो की शिक्षा का तो प्रश्न ही नही उठ सकता था।

सास्कृतिक दृष्टि से साहित्य, कला, सगीत एव हस्त शिल्प आदि भी उच्च कुलीन लोगो के मुखापेक्षी थे। सगीत-नृत्य को समाज मे हेय दृष्टि से देखा जाता था। पेशेवर वेश्यायें ही इसे धधे के रूप मे करती थी तथा कुलीन लोग भी उनके यहा जाते थे। राजघरानो मे वेश्याओ की पूछ थी। अन्य धार्मिक लोग भी महफिलो, उद्यान गोष्ठियों आदि का आयोजन करते जिनमे वेश्यायें भाग लेती। सगीत की रक्षा का सच्चा श्रेय धार्मिक सप्रदायो को है जिनके यहा भगवद्-भक्ति के निर्गुण अथवा सगुण पद,साखिया आदि गाई जाती थी जो अनेक राग रागिनियो मे निबद्ध होती थी। धनिक लोग ही हवेलियो, छतरियो आदि मे चित्रकारो को लगाकर भित्ति-चित्र बनवाते अथवा प्रेम-कथाओ के गुटको मे विविध प्रकार के

चित्र बनवाते। ढोला मारू, बीझा-सोरठ, नागजी-नागमती, जलाल-बूबना आदि बहुसख्यक प्रेम-कथाए इस युग मे चित्रित हुईं। ये गुटके उच्चकुलीन लोगो मे एक-दूसरे को भेंट मे दिए जाते थे। रामायण, महाभारत, गीत-गोविंद, कृष्ण लीला, रासमडली, बारहमासा, राग-रागिनी आदि के बहुसख्यक चित्र भी धनिको के प्रश्रय म बने। इसी प्रकार वस्त्र, अलकरण, युद्ध-सामग्री आदि की अनेकविध वस्तुए शिल्पियो के हाथो से सुसज्जित हुईं जिन्हे समर्थ लोग ही खरीद पाते थे।

समाज धार्मिक अधविश्वासो एव परपरागत रूढियो से घिरा हुआ तो था ही, पर उन्हें चिकित्सा, शिक्षा, सचार-साधन एव आवागमन के लिए भी आदिम तरीको पर अवलबित रहना होता था। आवागमन एव सचार के अभाव मे पारस्परिक विचार-विमर्श भी सभव नही था और ग्रामीण जीवन अपने स्तर पर पृथक् इकाई के रूप मे ही चल पाता था। इसके लिए पडोस, गाव और आस-पास के लोगो का पारस्परिक सहयोग एव विश्वास ही एकमात्र सबल था। अत जातीय पचायतो का प्रचलन था और वे ही सभी प्रकार के मामले निपटा देती थी। गावो के मुखियाओ के पास भी कम ही मामले आते। इस प्रकार स्वशासन की आत्मनिर्भरता होने के कारण ऐसे कामो म राजकीय दखल नाममात्र का ही रह पाता था।

चोरी-डाके की घटनायें अपेक्षाकृत कम हो पाती थी क्योकि सुरक्षा का दायित्व राज्य का सबसे बडा कार्य था। जिस राजा या सामत के यहा सुरक्षा नही हो पाती उसे छोडकर लोग अन्यत्र जा बसते थे। आर्थिक समृद्धि के लिए राजा एव सामत, वणिक् वर्ग एव शास्तकारो को सुरक्षा का भरोसा दिलाकर अपने यहा बसने के लिए आमत्रित करते थे।

स्थानीय राजस्व एव अन्य करो के अतिरिक्त भ्रमणशील व्यापारियो-'बनजारो' से एव राह चलने वाली 'कतारो' से निर्धारित मात्रा मे कर लिया जाता था। मुख्य व्यापार-मार्गों पर पडने वाले राज्यो मे तो आमदनी अच्छी मात्रा में हो जाती थी। घोडो के व्यापारी भी पर्याप्त कर देते थे। एक राज्य से दूसरे राज्य मे यात्रा करने पर आम लोगो पर कोई पाबदी नही थी। हा, उन्हें सबधित राज्यो के चुगी-नाका आदि के करो को अवश्य देना होता था।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि निरतर युद्ध-भय मे रहते हुए भी जन-साधारण मे कभी कोई बडे पैमाने पर भगदड की घटनायें नही होती थी। जन-जीवन प्राय शात एव सामान्य रहता था। लोग समूहों मे रहते थे और सामूहिक भावना की आवश्यकता का अनुभव करते थे।

जब कि राजस्थान के बहुसख्यक राज्यो मे न्यूनाधिक यही स्थिति थी, मेवाड

जैसे विद्रोही राज्य मे अधिक जागरूकता और सजगता होना स्वाभाविक था। फिर भी नागरिक एव ग्रामीण जीवन इन परिस्थितियो का अभ्यस्त होने के कारण उन्हें भय की निरतरता आक्रात नही कर पाती थी।

राज और समाज की ऐसी स्थिति मे तत्कालीन चारण समाज के सम्मान्य व्यक्ति और एक प्रतिभासम्पन्न कवि के रूप मे दुरसा आढा के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्याकन करना ठीक होगा।



अध्याय 3

कृतियों का विवरण

मध्यकालीन चारण कवि वीर तथा भक्ति रस की रचनाओ को प्रमुखता देते थे। युद्धवीरो, दानवीरो तथा सतियो की प्रशसा मे कहा गया यह साहित्य हजारो रचनाओ के रूप मे मिलता है। उनके अतिरिक्त नीति तथा भक्ति-साहित्य मे भी उनकी विशेष रुचि थी। उपर्युक्त सभी प्रकार की रचनाए प्राय सभी सिद्धहस्त कवियो ने की हैं। जिस प्रकार वे काव्य-नायको के आदर्श गुणो का बखान करते थे उसी प्रकार उनके चारित्रिक अवगुणो तथा दुष्कृतो की भी निन्दा करते थे। उनके प्रशसात्मक काव्य को 'सर' तथा निन्दात्मक को 'विसर' कहा जाता है। 'विसर' काव्य का प्रधान लक्ष्य भी प्रताडना के अतिरिक्त उनकी सद्‌बुद्धि को जागृत करना ही होता था। ऐसे काव्य को 'चारण चाबुक' के नाम से भी कहा गया है।

चारणो की इस काव्य की भाषा को 'डिंगल' कहा गया है। अधिकतर विद्वानो की सम्मति मे यह नामकरण छदशास्त्र के लिए प्रचलित परपरागत नाम 'पिंगल' पर बनाया गया था। पिंगल ऋषि को छदशास्त्र का प्रणेता मानने के कारण समूचे छदशास्त्र को ही 'पिंगल' के नाम से जाना जाने लगा था। चारणो से पूर्व सभवत सभी प्रकार का काव्य पिंगल द्वारा वर्णित छदो मे ही रचा जाता था। चूंकि चारणो ने स्वय की अनेक छन्द विधाओ का भी आविष्कार कर लिया था, अत उन्होने अपने छद-शास्त्र को 'डिंगल' नाम दे दिया। धीरे-धीरे यह अभिधान छदशास्त्र से हटकर 'भाषा' के लिए प्रयुक्त होने लगा। ब्रजभाषा मे लिखने वाले कवियो की भाषा का नाम पिंगल छदो के प्रयोग के कारण 'पिंगल' प्रसिद्ध हुआ तो चारणो ने अपनी राजस्थानी भाषा की काव्य-शैली का नाम 'डिंगल' रख लिया। इस प्रकार ब्रजभाषा की वह काव्य-शैली जो राजस्थान मे व्यवहृत हुई 'पिंगल' के नाम से जानी जाने लगी तथा राजस्थानी भाषा मे चारणो द्वारा विशिष्ट शैली एव छदो में लिखा जाने वाला काव्य 'डिंगल' कहलाया। 'पिंगल' और 'डिंगल' की यह स्पर्द्धा सोलहवी सदी के पहले से ही दिखाई देने लगी थी। सत्रहवी सदी के भक्त कवि साया झूला ने अपने 'नागदमण' नामक काव्य मे 'उठै टीगळा पीगळा रा अगारा'

कहकर इस द्वन्द्व की ओर संकेत किया है।

तत्कालीन चारण कवि 'पिंगल' के छद शास्त्र से तो परिचित थे ही पर उन्होंने कुछ अन्य छदो का भी आविष्कार किया जिन्हे 'गीत' के व्यापक नाम से जाना जाता है। ये 'गीत' गाये नही जाते थे, अपितु एक विशेष लय मे निर्दिष्ट पद्धति से पढ़े जाते थे। इसलिए इन्हे गेय गीत नही समझा जाना चाहिए। प्रत्येक वीर अपने सुयश के लिए 'गीत' कहे जाने की इच्छा रखता था। कीर्ति के प्रतीक 'गीतडा कै भीतडा' (गीत या वास्तु-निर्माण) मानने वाले भी गीतों को ही प्रमुखता देते थे, क्योंकि चूने-पत्थर के निर्माण तो समय पाकर धराशायी हो जाते हैं, पर कीर्ति अमर रहती है —

"कीरत महल अमर कमठाण"
(कीर्ति रूपी महल कभी न मिटने वाले निर्माण है)

डिंगल छदा मे पिंगल के दूहा, सोरठा, छप्पय, भुजगी, अडिल्ल, कुडलिया, झूलणा, तोटक, पद्धरि आदि तो सम्मिलित हैं ही पर एक सौ से ऊपर अन्य गीत छद है जिनमे से कुछ नाम इस प्रकार है—

साणोर, वेलियो, सुपखरो, झमझप, चितहिलोळ, प्रहास, सावझड़ो, नीसाणी, पालवणी, गजगत, घोटीबध, पडउथळ, ढोल आदि। पिंगल छदो की ही भांति ये मात्रिक तथा वर्णिक दोनो प्रकार के होते है। गीतों के नामकरण से उनकी ध्वनिगत एव गठनात्मक प्रक्रिया का बोध होता है। मृग की छलाग के समान छोटी पक्तियो के बाद बडी पक्ति आने के कारण 'झमझप' नाम सार्थक हुआ। इसी प्रकार ढोल की ध्वनि का आभास देने के कारण गीत का नाम ही 'ढोल' रख दिया गया। इसी प्रकार अन्य अनेक गीतों के नामकरण की विवेचना की जा सकती है। छदशास्त्रियों ने डिंगल के सभी छदों के लक्षण-उदाहरण देकर तथा साथ ही काव्य-शास्त्र के अन्य पक्षो की भी यत्किंचित् विवेचना प्रस्तुत करते हुए लक्षण-ग्रथो की रचना की है। अभी तक ऐसे डेढ दर्जन ग्रथ प्रकाश मे आए है। इन सभी मे 'गीतो' की सख्या मे बडा अतर है। रघुनाथ रूपक (कवि मछकृत), रघुवरजस प्रकास (किसना आढा कृत), हरि पिंगल (जोगीदास कृत) लखपत पिंगल (हमीरदान कृत), कविकुल बोध (उदयराम कृत), पिंगल शिरोमणी (कुसललाभ कृत) तथा छद रत्नावली (हरिराम निरजनी कृत) के नाम उल्लेखनीय है।

दुरसाजी ने अनेक डिंगल छदो मे रचनायें की है जिनसे छद-शास्त्र सबधी *उनकी बहुज्ञता का आभास होता है। मध्यकाल मे जैन यति बडे विद्याव्यसनी हुआ* करते थे। उन्हे सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश आदि के साथ-साथ देश-भाषाओ का भी अच्छा ज्ञान होता था। साहित्य-शास्त्र के अतिरिक्त वे ज्योतिष, वैद्यक, सामुद्रिक, तत्र-मत्र-यत्र आदि विद्याओ मे भी निष्णात हुआ करते थे। एक किंवदन्ति के अनुसार दुरसाजी की शिक्षा एक जैन यति के यहा हुई थी। इसलिए उनका अनेक

विद्याओं एवं कलाओं में पारंगत होना समझ में आता है। और इन सबसे ऊपर, चारण-समुदाय से पैतृक परम्परागत काव्य कला भी उन्होंने अवश्य सीखी होगी।

यहां दुरसाजी की रचनाओं का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा प्रयुक्त छंदों, विषय-वस्तु तथा सबंधित ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं के विवरण देने का प्रयत्न किया जा रहा है—

(1) **विरुद छिहत्तरी**—महाराणा प्रताप की प्रशंसा में कहे गए छिहत्तर सोरठों का इसमें संकलन किया गया है। 'सोरठा' छंद दोहे का उलटा होता है। दोहे में दूसरे तथा चौथे चरणों की तुकें मिलती है जब कि सोरठे में पहले व तीसरे की। संख्यावाचक कृतियां साहित्य में बहुतायत से गिनती हैं। सतसई, शतक, बावनी, बहत्तरी, छत्तीसी, बत्तीसी, पच्चीसी आदि नामों से अनेक रचनायें प्राप्त हैं। 'छिहत्तरी' भी इसी प्रकार का नामकरण है।

कई विद्वानों ने हाल ही में इस रचना के 'दुरसा' कृत होने में संदेह व्यक्त किया है और इसे 'ऊमरदान लाळस' कृत माना है। इसका एक कारण यह भी बताया गया है कि इसकी कोई प्राचीन प्रति उपलब्ध नहीं है। 'देबारी' नामक घाटी-द्वार का उल्लेख—'देबारी सुर द्वार, अडियो अकबरियो असुर'—होने के कारण भी इसे समसामयिक रचना नहीं माना गया है, क्योंकि उन आलोचकों की राय में उस समय 'देबारी' का अस्तित्व नहीं था। वे सोरठों में आए हुए 'दुरसा' के उल्लेख के लिए मौन हैं, जो विचारणीय है। एक उल्लेख निम्न प्रकार है—

करै खुसामद कूर, करै खुसामद कूकरा।
'दुरस' खुसामद दूर, पुरस अमोल प्रतापसी॥

यहां 'दुरस' संभवतः 'दुरसा' ने अपने लिए ही लिखा है। हो सकता है किसी कवि ने चलाकर ऐसे नामोल्लेख किए हो ताकि संशय की गुंजायश नहीं रहे। एक शंका का विषय यह भी है कि 'ऊमरदान' ने भी सन् 1900 ई० में प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका लिखते हुए इसकी प्राप्ति के स्रोत को प्रच्छन्न ही रखा है। ऊमरदान की रचना शैली, यथा अतिशय निंदात्मक शब्दों का प्रयोग—अकबरियो, तुरकड़ा, कूकरा आदि, और देश, मातृभूमि आदि के अपेक्षाकृत आधुनिक विचार भी इस शंका को पुष्ट करते है। दुरसा की प्रौढ़ मध्यकालीन भाषा व शैली से इस भाषा व शैली का साम्य बड़ी कठिनाई से भी नहीं बैठाया जा सकता। इन परिस्थितियों में इस प्रश्न पर निर्णयात्मक ढंग से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस विषय में एक दन्तकथा भी है कि मारवाड़ का एक कर्मचारी 'बच्छराज सिंघवी' किसी कारणवश राज्य से निष्कासित कर दिया गया। वह ऊमरदान लाळस से महाराणा प्रताप विषयक कुछ सोरठे लिखवा कर मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा फतहसिंह के पास गया और वह प्रकाशित पुस्तक महाराणा को भेंट की। कहते हैं इस पर महाराणा ने उसकी दो सौ रुपये माहवार की पेंशन कर दी।

इस कृति के प्रारंभ व अंत के कुछ सोरठे इस प्रकार हैं—

अलख पुरुप आदेश, देश बचाय दयानिधे।
बरनन करू विशेष, सुहृद नरेश प्रतापसी॥
गढ ऊचो गिरनार, नीचो आबू ही नही।
अकबर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसी।
आभा जगत उदार, भारतवरस भवानभुज।
आतम सम आधार, पीनम राण प्रतापसी॥
कवि प्रारथना कीन, पडित हू न प्रवीन पद।
दुरसो आढो दीन, प्रभु तव सरण प्रतापसी॥

हे अलख पुरुष आपको प्रणाम है। हे दयानिधि, देश के प्रिय नरेश प्रतापसिंह की रक्षा करें। मैं उन्ही के यश का विशेष वर्णन करता हू। गिरनार का गढ ऊचा है, पर आबू भी नीचा नही है (अत) अकबर यदि पाप का अवतार है तो प्रताप भी पुण्य का अवतार है। भारतवर्ष आपकी भुजाओ के बल पर ही स्थित है, आप अपनी उदारता से ससार को आलोकित करते हैं। अत, हे महाराणा, आप ही पृथ्वी पर आत्मा के समान आधार वाले हो। कवि प्रार्थना करता है कि मैं 'दुरसा आढा' नाम का दीन न तो पडित हू और न चतुर ही। हे प्रभु, प्रतापसिंह, मैं आपकी ही शरण हू।

इन सोरठो मे अनेक कल्पनाओ के माध्यम से अन्य नरेशो की तुलना मे प्रताप की विशिष्टता बताते हुए उनकी स्वतंत्र भावना की प्रशस्ति और अकबर की निन्दा की गई है।

(2) **राव सुरताण रा झूलणा**—सिरोही के राव सुरताण दुरसा के आश्रयदाता थे। युद्ध क्षेत्र से घायल अवस्था मे इन्हे पालकी म ले जाकर सुरताण ने ही इनकी चिकित्सा करवाई थी तथा इन्ह अपना 'पोलपात' (प्रतोली पात्र—जो द्वार पर खडा होकर विरुद पाठकरे और विशिष्ट अवसरो पर दान—'नेग'—ले।) नियुक्त किया था। सुरताण से इन्हे 'कोड पसाव' (एक करोड के मूल्य का दान—'प्रसाद') तथा गाव भी प्राप्त हुए थे। राव सुरताण भी अपनी वीरता तथा स्वातन्त्र्य-भावना के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। ये सवत् 1628 (सन् 1571 ई०) मे सिरोही की गद्दी पर बैठे थे। इन्होने जीवन मे 51 युद्ध किए थे और अनेक बार हार कर इन्हे राज्य-त्याग भी करना पडा था। सम्राट् अकबर ने सीसोदिया जगमाल को इनके विरुद्ध भेजा था। दत्ताणी नामक स्थान पर हुए उस युद्ध म सुरताण ने बडी वीरता दिखाई थी। इनकी मृत्यु सवत् 1667 (सन् 1610 ई०) मे हुई। दुरसाजी ने सुरताण के लिए झूलणे (नीसाणी), कवित्त (छप्पय) आदि अनेक छदो की रचनायें की है।

'झूलना' छद के दो प्रकार बताते हुए 'छद प्रभाकर' के रचयिता जगन्नाथ-प्रसाद ने इनके लक्षण 29 मात्राओ (7—7—7—5 गुरु लघु अत) तथा 37

मात्राओं (10—10—10—7 यगणात) के दिए है। 'रघुवरजसप्रकास' नामक डिंगल छद-ग्रथ मे भी इसे 37 मात्राओं का बताया गया है, जिसमे बीस मात्रा पर विश्राम रखा है और दो 'सतरों' के बाद अत मे गुरु बताया है। इस लक्षण के अनुसार प्रस्तुत कृति 'झूलणा' नही कही जा सकती। इसका लक्षण नीसाणी' नामक अन्य छद से मिलता है जिसके तेईस मात्रायें होती हैं और तेरह तथा दस मात्राओं पर विश्राम होते हैं। इस 'नीसाणी' छद के बारह भेद गिनाए गए हैं। झूलणा के नाम से रचित यह छद इसी नीसाणी का 'शुद्ध जामडी' नामक भेद है जिसमे तेरह तथा दस मात्राओं पर यति के साथ अत में दो गुरु हैं। पर यह भी सत्य है कि इन्ही लक्षणों की अनेक रचनायें 'झूलणा' के नाम से ही प्रचलित हैं, यथा—माला सादू कृत 'महाराजा रायसिंघ रा झूलणा' तथा 'झूलणा अकबर पातसाहजी रा'। इससे यह प्रतीत होता है कि 'झूलणा' छद का यह लक्षण समय पाकर लुप्त हो गया और लक्षण-ग्रथो के रचयिताओं ने इस ओर विशेष ध्यान नही देकर स्वय के ही लक्षण-उदाहरण गढ कर परपरागत छद ज्ञान का अनुमोदन कर दिया। राव सुरताण के 'झूलणा' छद की एक बानगी निम्न प्रकार है। इसमे 'दत्ताणी' नामक स्थान पर जगमाल सीसोदिया तथा जोधपुर के रायसिंह चद्रसेनोत के साथ हुए उनके युद्ध का वर्णन किया गया है—

सोर धुआ रवि ढक्कियो, अरबद रीसाणू।
त्रह त्रह त्रबक बाजिया, त्रीपुर सणाणू॥
राणे मन्न विचार कर, कमधज केवाणू।
जो घर जावा जीवता, ध्रग जीवण जाणू॥

"बारूद के धुएँ से सूर्य ढक गया, अर्बुद पहाड क्रोधित हो उठा, 'त्रह' की ध्वनि से नगाडे बज उठे, तीनों पुर चकित हो गए, (राणा) जगमाल ने मन मे विचार कर राठौड रायसिंह को कहलवाया कि यदि इस युद्ध से लौटकर जीवित ही घर पहुचे तो जीवन धिक्कार है।"

(3) **झूलणा राव अमरसिंघ गजसिंघोत रा**— जोधपुर के महाराजा गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र राव अमरसिंह की वीरता इतिहासप्रसिद्ध है। गजसिंह द्वारा इन्हे देश-निकाला देकर राज्यच्युत कर दिए जाने पर 'शाहजहा' ने इन्हें 'नागौर' की जागीर देकर अपनी सेवा मे रख लिया था। इसी सेवा-काल मे इन्होने 'सलावतखा' नामक बादशाही मीरबख्शी को दरबार मे अपशब्द बोलने पर कटारी के वार से मार डाला था। उस समय सारे दरबार मे खलबली मच गई थी। अमरसिंह जब किले से बाहर आने लगे तो 'दाराशिकोह' के इशारे पर अमरसिंह के ही साले 'अर्जुन गौड' ने इन्हे मार डाला था। अमरसिंह के शव की दाह क्रिया के समय राठौडो ने बडी बहादुरी का परिचय दिया था। इन्ही अमरसिंह की बहुविध प्रशस्तिया तत्कालीन काव्य एव लोक-साहित्य मे की गई हैं। दुरसाजी भी अमरसिंह

के समकालीन थे,अत एक जागरूक कवि के नातेउन्होंनेभी 'झूलणा' छद मे इनकी प्रशस्ति कही है। यह घटना 26 जुलाई, 1644 ई० को घटित हुई थी। दुरसाजी की मृत्यु सवत् 1708 (सन् 1651 ई०) मे मान लेने से यह उनके अतिम वर्षों की रचना प्रमाणित होती है। इसमे वर्णित अनेक वीरो (कुल 16) के नाम—'वल्लू चापावत' 'भाऊकरण' 'भाटी जसवत', 'तिलोक चहुवाण', 'गिरधर गगावत' आदि—इतिहासप्रसिद्ध हैं।

'झूलणा' की एक बानगी इस प्रकार है—

(आदि) आद वडा घर हिन्दवा, राव माल मडोवर,
जीणे जगहथ बधिया, नवखडा ऊपर।
लख रावत आफाळिया, नव लाख बहादुर,
दश दिस छायी मेदनी, पण मेघाडवर॥

"हिन्दुओ के आदिकालीन बड़े वश मे मडोवर का राव मालदेव हुआ, जिसने नौ खडो पर अपनी कीर्ति-पताका फहराई। उसने नौ लाख वीरो के साथ लाखो योद्धाओ को परास्त किया। सारी पृथ्वी पर, दशो दिशाओं मे, इसकी सेना की पदधूलि बादलो के रूप मे छा गई।"

(4) **राव सुरताण रा कवित्त**—अपने आश्रयदाता राव सुरताण के लिए दुरसा ने 'झूलणा' के अतिरिक्त 'कवित्त' भी लिखे हैं। यह अपेक्षाकृत छोटी रचना है। इसमे राव सुरताण के चारित्रिक गुणो को शोककाव्य (मरणोपरात कहा गया काव्य) के रूप म उभारा गया है। 'कवित' एक मुक्तक छद है और इसके 'घनाक्षरी', 'मनहर' आदि नौ भेद माने गए है। यह मात्रा और गणो के बधनों से मुक्त, केवल अक्षरो पर आधारित, लयप्रधान छद है। इसम सोलह, पद्रह की यति सहित (अथवा 8 8,8,7) इकत्तीस अक्षर होते है और अत म गुरु होता है। पर कवित्त के नाम से ज्ञात इस रचना के लक्षणो को देखने से यह 'छप्पय' छद की रचना प्रमाणित होती है। छप्पय की प्रथम चार पक्तिया 'रोला' छद की 24-24 मात्राओं की तथा अतिम दो पक्तिया 26 या 28 मात्राओ के 'उल्लाला' छद की होती है। इसी कसौटी पर य छद सही उतरते हैं।

सुरताण ने दुरसा को 'कोडपसाव' का जो दान दिया था उससे सम्बन्धित एक छप्पय (कवित्त ?) निम्न प्रकार है—

सोहन ढाल सुभात जीण सहता जळवत्ती,
सूसोवन समसेर, सहत कट्टआ भगवत्ती।
कूचीअ सहित कमाड, गरथ सूसोवन माळा,
सतर लाख रोकड़ा, गाज करता कम्माळा।
पेसुओ गाम ताबापतर, अणमग सासण अप्पियो।
सुरताण राव भाणगर, कव चो दाळद कप्पियो॥

"अच्छी पकड़ वाली ढाल, जीन सहित (घोड़ा ?), सुंदर शमशेर, बटुक सहित भगवती (दुर्गा), चार्वा सहित कपाट, स्वर्ण की माला, सत्रह लाख रुपये नकद, गाज करते हुए ऊँट और पेशुआ नामक गांव का ताम्रपत्र, अभग 'शासन' के रूप में अर्पित करके 'भाण' के श्रेष्ठ पुत्र सुरताण ने कवि (दुरसा) का दारिद्र्य काट डाला।

(5) **'झूलणा' रावत मेघा रा**—यह एक छोटी-सी रचना है। इसमें तत्कालीन मेवाड़ राज्य के ठिकाने "बेगू" के चूंडावत शाखा के सरदार रावत 'मेघा' द्वारा, महाराणा अमरसिंह के समय में, शाही सेना से किए गए युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध सन् 1608 ई० में महाराणा अमरसिंह के विरुद्ध भेजे गए मुगल सेनापति महावतखां, से 'ऊंटाला' नामक दुर्ग पर आक्रमण करके किया गया था। रावत मेघ ने इसमें बड़ी वीरतापूर्वक महावतखां को पराजित किया था।

इसके साथ ही रावत मेघ द्वारा पंवार क्षत्रियों के विरुद्ध लड़े गए युद्ध का भी उल्लेख किया गया है। यह युद्ध 'बीजोल्या' (मेवाड़) के कुमार राव 'केशवदास' के साथ हुआ था। महाराणा से रुष्ट होकर जब रावत मेघ 'जहांगीर' के पास चला गया था तो बादशाह ने उसे "मालपुरा" की जागीर बख्श दी थी। मालपुरा पर अधिकार करने के प्रसंग में ही पंवार रावकेशवदास से युद्ध हुआ था। मेघसिंह बाद में महाराणा के राजी होने पर बादशाह को छोड़कर आ गया था। उसकी मृत्यु सन् 1628 ई० में हुई।

उपर्युक्त दोनों घटनाओं की ऐतिहासिकता के संदर्भ में यह कृति बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें एक सच्चे वीर की वीरता बड़े प्रभावशाली ढंग से वर्णित की गई है।

(6) **कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरीनी 'गजगत'**—राजस्थानी छंदों के एक प्रकार 'गजगत' में रची गई 72 छंदों की इस कृति में गुजरात के जाम सत्ता के पुत्र 'अज्जा' की वीरता का बखान किया गया है। यह युद्ध सम्राट् अकबर के समय में मुगल सेनापति 'अजीज कोका' तथा गुजरात के 'मुजफ्फरशाह द्वितीय,' एवं 'नवानगर' के जामसत्ता की सम्मिलित सेनाओं के बीच लड़ा गया था। उक्त युद्ध में मुजफ्फरशाह तथा जाम ने पलायन किया था। अपने पिता के इस अशोभनीय कृत्य से लज्जित होकर कुमार अज्जा अपने वजीर 'जस्सा' के साथ शाही सेना से युद्ध करते हुए दिवंगत हुए। कुमार की वीरता की प्रशंसा तत्कालीन इतिहासकारों ने भी की है। यह युद्ध सन् 1591 ई० में लड़ा गया था।

'गजगत' नामक छन्द की परिभाषा आचार्यों ने इस प्रकार की है—इस छंद के पहले द्वाले के प्रथम व तृतीय चरणों में 11-11 मात्रायें तथा दूसरे और चौथे चरणों में 9 9 मात्रायें होती हैं। पहले व तीसरे चरणों के अंत में "जी" या 'रे' लगाया जाता है। इनके जोड़ने से ही उक्त चरणों में ग्यारह मात्राओं का विधान

बैठता है। दूसरे द्वाले के प्रत्येक चरण में 28-28 मात्रायें होती हैं और अन्त में गुरु होता है। चारो चरणों की तुकें समान होती हैं। ("रघुवरजसप्रकास" में दिये गए लक्षणों के आधार पर)। दुरसा ने इन लक्षणों की पूर्ति तो की ही है, पर पहले द्वाले के चौथे चरण के अंतिम शब्द की पुनरावृत्ति कर उसे दूसरे द्वाले के प्रारंभ में रखा है। इसी प्रकार प्रथम द्वाले के प्रारंभिक शब्द को ही दूसरे द्वाले के अंतिम शब्द के रूप में प्रयुक्त किया है। इससे रचना में आलंकारिकता आ गई है।

प्रस्तुत "गजगत" में कुमार अज्जा के वीर कृत्य को विवाह के सांगरूपक में ढाला गया है। रूपकों की यह परम्परा राजस्थानी कवियों को बड़ी प्रिय रही है। वीरों का यशवर्णन करते हुए अनेक प्रकार के रूपकों की कल्पना की गई है और उनकी प्रक्रिया के प्रत्येक अंश को उपमित किया गया है। रंगरेज, किसान, कुम्हार आदि अनेक व्यवसायों को सांगोपांग रूप में दरसाया गया है। यह "गजगत" भी इसी प्रकार की एक रूपकबद्ध रचना है। इसका एक छंद निम्न प्रकार है—

पटहथ पारकरीजां, खेहा डम्मरी।
घोड़ा घुम्मरोजी, थगनग थरहरी॥
थरहरे थगनग, अछा थरके, मडळ खेहा डम्मरी।
गरवरे डीया, भवर गड़पत, सवळ स्री सो सुन्दरी॥
मदमसत कावल, घणा मुगल, पछट दे हथ पाखरी।
अजमाल वरवा काज आवी, पकग पटहथ पारकरी॥

"पट्ट हस्तियों पर पाखर डालकर, धूलि से आकाश को आच्छादित करती हुई, घोड़ों की टापों से पृथ्वी को कंपायमान करती हुई सबल शत्रु सेना रूपी सुंदरी आई है। दूसरे अनेक गढ़पति भयभीत हो गए हैं। इसके मदोन्मत्त काबुली और मुगल सैनिक सीधा प्रहार करने वाले हैं। ऐसे हाथियों और घोड़ों से सुसज्जित शत्रु सेना रूपी सुंदरी 'अजमाल' का वरण करने आई है।"

(7) राजा मानसिंह रा झूलणा—यह भी दूसरी 'झूलणा' छंद वाली रचनाओं की भांति 23 मात्राओं के "नीसाणी" छन्द में रची गई कृति है। इसमें समान तुकों वाली 23-23 मात्राओं की 12-12 पंक्तियों के आठ छंद हैं (कुल 82 पंक्तियां)। अंतिम में बारह के स्थान पर 10 पंक्तियां ही हैं। सभी के अंत में दो गुरु हैं।

इस रचना में सामान्य रूप से आमेर के कछवाहा राजा 'मानसिंह' का यश वर्णन किया गया है। आमेर नरेश 'भारमल' के पोते तथा राजा 'भगवतदास' के कुमार मानसिंह बादशाह अकबर के विश्वस्त सेनानायकों में रहे हैं। इन्होंने बादशाह की ओर से भारतवर्ष में तथा इसके बाहर भी अनेक युद्धों में विजयश्री का वरण किया। इनकी वीरता, वदान्यता और धर्म-परायणता राजपूत इतिहास में

सुविख्यात रही है। दुरसा ने इनकी प्रशंसा करते हुए तत्कालीन क्षत्रिय समाज में इनकी श्रेष्ठता की बात कही है। इस काव्य का एक अंश इस प्रकार है—

रासस वस निकंदणा, एको पति सीता
भार अठार अमूलणा, हेको हणवंता
सब्ब अंधार विखंडणा, एकोइ आदित्ता
एकोइ सेस सहारणा, धर मेर सहित्ता
एकोइ गोकुलि कन्हिवा, गिर नक्खग्रहित्ता
एकोइ चन्दन सेवियै, बन बदन कित्ता
एकोइ सिसहर नवखडे, अमरित्त सूवित्ता
एकोइ वन्नि मुवन्निया रितिराव फळित्ता
एकोइ जळहर अूबडै, नवखड भरित्ता
एकोइ रिखीअगस्त हैं, जिण सायर पित्ता
हसती मारा विडारणा, इक सीह कहित्ता
एकण मान महावळी ससारोई जित्ता

'राक्षस वश का नाश करने वाले एक सीतापति—राम—ही थे। अठारभार वनस्पति का उन्मूलन अकेले हनुमान ने किया। समस्त अधकार का नाश एक ही आदित्य करता है। अकेला शेषनाग पहाड़ों सहित धरती को धारण करता है। अकेले कृष्ण ने गोकुल में नरा पर गिरिवर को धारण किया। एक चदन का वृक्ष ही समस्त वन को सुवासित कर देता है। अकेला चन्द्रमा ही नवो खडो में अमृत बरसाता है। ऋतुराज अकेले ही वनराजि को प्रस्फुटित कर देता है। अकेले एक जलधर ही बरस कर नवो खडो को जलापूरित कर देता है। अकेले अगस्त्य ने समुद्र का पान कर लिया था। अकेला सिंह ही अनेक हाथियों को विदीर्ण कर देता है। इसी प्रकार अकेले महाबली मानसिंह ने समस्त ससार को जीत लिया है।"

(8) दूहा सोलकी वीरमदे रा—'दूहा'—हिन्दी 'दोहा'—अपभ्रंश काल का एक प्राचीन छद है। राजस्थानी में इसके अनेक भेद व नाम कहे गए हैं, यथा—सोरठो, खोडो, चोटियाळो, तूवेरी, माऊळियो, बडो, डोढो, आदि। विषय वस्तु की दृष्टि से भी इसके कई भेद हैं, यथा—रग रा दूहा, सिंधू दूहा, पारिजाऊ दूहा, आदि।

राजस्थानी छदाचार्यों ने वर्ण-गणना के अनुसार इसके 23 भेद गिनाए हैं। 'हिगुलाजदान' कविया ने अपने 'प्रत्यय पयोधर' नामक छदग्रथ में दोहे के प्रसार की चर्चा करते हुए इसका अत्यधिक विस्तार दिखाया है। 'दूहा' राजस्थानी कवियों का अत्यन्त प्रिय छद है। शायद ही ऐसा कोई कवि हो जिसने 'दूहा' नहीं कहा हो। नीति काव्य का तो यह प्रमुख छद रहा ही है पर 'वीरमजनमई' जैसे ग्रंथों

मे वीर रस का भी यह विलक्षण वाहन प्रमाणित हुआ है। वास्तव मे 'दूहा' हर प्रकार की रचना का सबल माध्यम है। उर्दू 'शेर' की तरह यह अपने आप मे पूर्ण है। एक समग्र भाव को चित्र की तरह उपस्थित करने मे इसकी टक्कर का दूसरा छद नही है, यह कहा जाना कोई अत्युक्ति नही होगी। राजस्थानी काव्य का सबसे बडा भाग दूहो मे ही समाया हुआ है। विद्वानो की धारणा है कि दूहों की सख्या एक लाख से भी ऊपर सरलता से कही जा सकती है।

कवि दुरसा ने भी दूहो का खुलकर प्रयोग किया है। सोलकी 'वीरमदे' से सबधित दूहे 'साकलिया' प्रकार के हैं। इसके पहले तथा चौथे चरणो मे 11-11 मात्राए और दूसरे तथा तीसरे चरणो मे 13-13 मात्राए होती हैं। पहले और चौथे चरणो की ही तुकें मिलने के कारण इसे 'अतमेल' भी कहते है। इसका अन्य नाम 'बडा दूहा' भी है। युद्ध-वर्णन के प्रसगों मे इसका प्रयोग प्रभावोत्पादक समझा जाता है। 'साकळ' राजस्थानी मे 'जजीर' या 'अर्गला' को कहते है। दूहे के गठन से इसके नामकरण का साम्य ध्यान देने योग्य है।

वीरमदे सोलकी ने शाही सेनाओ तथा महाराणा प्रताप और अमरसिंह के बीच हुए युद्धो मे बडी वीरता का प्रदर्शन किया था। इतिहासप्रसिद्ध चालुक्य वश की नाथावत' शाखा मे उत्पन्न वीरमदे 'सावतसी' का पौत्र तथा 'देवराज' का पुत्र था। 'देसूरी' (तत्कालीन मेवाड राज्य का एक भाग) उसे महाराणाओ से जागीर मे प्राप्त थी। उसने 'हल्दीघाटी' के युद्ध मे भी भाग लिया था। महाराणा अमरसिंह ने उसे बडा सम्मान प्रदान किया था। उसकी मृत्यु सन् 1599 ई० के आसपास ऊटाला दुर्ग के युद्ध मे हुई। प्रस्तुत दूहो मे मेवाड के युद्धो का ऐतिहासिक विवरण देते हुए दुरसा ने वीरम के बल विक्रम का बहुत सुदर वर्णन किया है। दूहो की एक बानगी प्रस्तुत है—

काळौ कळिहि कठीर, सामतसी दूजो सुदन।
टीलाइत त्रिभुअण तणो, हू वाखाणमि वीर॥
जनम हुओ जसराति, नग्नाइक मोटै नखति।
वीर भली वाधावियो, प्रज वैकुठ प्रभाति॥
देद तणो जिण दीह, वीरमदे दीठो वदन।
राणिक पोह कीधी रळी, सवळी सामतसीह॥

"कलियुग के पापो का सहार करने के लिए पराक्रमी सिंह, सामतसिंह के घर मे उत्पन्न, इस दूसरे त्रिभुवनपति वीर (वीरम) का मैं बखान करूगा। इस नरनायक का शुभ नक्षत्रो मे, यश रात्रि मे, जन्म होने पर वैकुठ की प्रजा ने उस प्रभात मे खूब हर्षोल्लास मनाया। देतराज के इस पुत्र का जिस दिन मुख देखा, उस दिन इसके दादा सामतसिंह ने राज्यभर मे खूब खुशिया मनाई।"

(9) किरतार बावनी—इस रचना मे इक्यावन छद ही हैं और प्रत्येक छद मे

विभिन्न व्यवसायों में लोगों के दुःखों का वर्णन किया गया है। कृषक, मल्लाह, महावत, पत्रवाहक, चोर, पासीगर, पट्टेबाज, वेश्या, भिक्षुक, पहरेदार, गारुडी, भाट, मरजीया, कहार, लोहार, साधु, बाजीगर, मदारी, लकड़हारा, कसाई आदि विभिन्न अभावग्रस्त और दलित वर्ग के दुःखों का सहानुभूतिपूर्ण वर्णन करते हुए कवि ने एक अद्भुत मानवीयता का परिचय दिया है। समृद्धि और ऐश्वर्य में खेलने वाले एवं उच्चस्तरीय कवि को समाज के इस निम्न वर्ग से परिचय प्राप्त करने और उनके दुःखों का अनुभव करने की जो प्रेरणा हुई वह उसकी कविधर्मोचित जागरूकता की साक्षी है।

छप्पय छंद में रचित यह रचना एक प्रकार से दुरसा के उत्कृष्टतम काव्य में से कही जा सकती है। इसके प्रत्येक छंद में दुःखी व्यक्ति द्वारा अपना पेट भरने के निमित्त सहे जाने वाले दुःखों का कारुणिक वर्णन किया गया है। एक लकड़हारे का चित्र देखिए—

जेठ महीना जोर, तपै तिह दणियर तातो।
धरती वसदे धखैं, महावळ लूये मातो॥
काळा गिरवर कहर, जोइ निहा निरधन जावै।
सिर भाटो ले सबळ, धमैं घर सामो धावै॥
भार सजोगें भेदीयो, भूमि पाव पाछा भरैं।
करतार पेट दूभर किया, सो काम एह मानव करैं॥

"जेठ के महीने में जब सूर्य प्रचंड रूप से तपता है, धरती पर आग-सी जलती है और वेगपूर्वक लुएं चलती है, निर्धन व्यक्ति उस समय तपते पर्वत की ओर जाकर सिर पर बड़ा भार लेकर घर की ओर शीघ्रता से आता है। पर अत्यधिक भार के कारण उसके पांव पीछे की ओर ही पड़ते हैं। भगवान ने पेट को कठिनता से भरने वाला बनाया है जिससे मनुष्य को ऐसे कठिन कार्य करने पड़ते हैं।"

(10) माताजी रा छंद—देवी (दुर्गा) के अवतार रूप में प्रसिद्ध चारण देवी 'आवड' की प्रशस्ति में यह कृति रची गई है। कवि ने इसे 'छंद चालकनेस माताजी रो' भी कहा है। 'चालक' नामक राक्षस का संहार करने के कारण देवी का नाम 'चालकनेस' प्रसिद्ध हुआ। 'आवड' नामक चारण कन्या 'मामड' नामक चारण की सात-पुत्रियों में सबसे बड़ी थी। सिंध के शासक हमीर सूमरा ने उनके रूप पर आसक्त होकर उससे विवाह करना चाहा था। पर आजीवन कौमार्य व्रत धारण करने वाली इस देवी ने सूमरा के राज्य का अंत करके वहां भाटियों का आधिपत्य करवाया, ऐसी किंवदन्ति है। तब से ही यह भाटियों की कुलदेवी के रूप में पूजी जाती है। 'आवड तूठी भाटियां' (अर्थात् आवड भाटियों पर प्रसन्न हो गई)—ऐसी उक्ति राजस्थान में प्रसिद्ध है।

प्रस्तुत रचना में कवि ने इस देवी के पराक्रम और माहात्म्य का वर्णन भक्ति-

पूर्वक किया है। प्राय प्रत्येक चारण कवि ने इन चारणी देवियो की प्रशसा मे गीत, कवित्त, दूहा आदि की रचना अवश्य की है। इसलिए दुरसा द्वारा भी इस परपरा का निर्वाह किया जाना उसकी आस्था का द्योतक है।

रचना का छद डिंगल छदशास्त्र का 'रोमकद' नामक प्रकार है। इसके प्रत्येक चरण मे आठ 'सगण' होते है और कुल वर्ण चौबीस। (आचार्यो के अनुसार 9 9, 8 और 6 वर्णो पर यति होती है। अतिमचरण की, दूसरे छद के चतुर्थ चरण मे पुनरावृत्ति होती है। पूरे छद मे 32 सगण होते है।)

उपर्युक्त प्रमुख रचनाओ के अतिरिक्त निम्नाकित स्फुट रचनाए भी मिलती हैं—'कवित्त देवीदास जैतावत रा, कवित्त लोगा सुरताणोत रा, कुडलिया देवीदास जैतावत रा, नीसाणी हाथीसिंध गोपालदासोत री, नीसाणी राव सुरताण री, गीत राजि श्री रोहितासजी रो। इनके साथ ही अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियो के शताधिक गीत भी उपलब्ध है। 'गीत' एक प्रकार की स्फुट रचना है जो कम-से-कम तीन पदो से प्रारम्भ होकर दसो-बीसो पदो तक की हो सकती है। अधिक लम्बी होने पर यह खड काव्य या प्रबध काव्य का रूप भी ले लेती है। अनेक रचनाए 'गीत' के किसी छद विशेष मे रची गई है। प्रिथीराज' कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' 'वेलियो' गीत मे ही रची गई प्रसिद्ध रचना है।

दुरसा की पर्याप्त लम्बी जीवनावधि को देखते हुए इनके गीतो की सख्या कई सौ होनी चाहिए। प्रयत्न करने पर दुरसा के रचे अन्य गीत भी मिलने सम्भव हैं, पर सबसे बडी कठिनाई उनकी प्रामाणिकता की है। हस्तलिखित सग्रहो मे सुरक्षित गीतो मे जहा-कही नामोल्लेख प्राप्त हो सकते है वही एक मात्र आधार है।

दुरसा ने अपने द्वारा रचित गीतो मे अनेक प्रसिद्ध गीत-प्रकारो का प्रयोग किया है, जिनमे से कुछ इस प्रकार हैं—साणोर (बडो, छोटो, खुडद और सोहणो के भेदो सहित), नीसाणी, पखाळो, अरटियो, पालवणी, भाखडी, सावझडो, वेलियो, आदि। इन सभी गीतो के लक्षण डिंगल के छद-ग्रन्थो मे विस्तार से बताए गए हैं। गीतो के विषय मे विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये प्राय किसी ऐतिहासिक व्यक्ति तथा ऐतिहासिक घटना के सबध मे कहे गए हैं। इसलिए इन्हें 'साख री कविता' (साखी की कविता) भी कहा गया है। इस प्रकार ये राजस्थान के इतिहास की भी अमूल्य सामग्री हैं। अभी तक इस दृष्टि से इनका अध्ययन नही *किया गया है।*

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक बार कलकत्ता मे एक चारण कवि के मुख से इन गीतो का पाठ सुन कर आत्मविभोर होकर यह कहा था कि 'ये गीत अपनी सरलता, सरसता और भावुकता मे सत साहित्य से भी उत्कृष्ट हैं। ये गीत ससार की किसी भी भाषा के श्रेष्ठतम साहित्य से टक्कर ले सकते है।' गीतो की प्रशसा और भी सुप्रसिद्ध विद्वानो ने मुक्तकठ से की है।

अध्याय 4

भाषा और शैली

दुरसा ने जिस भाषा मे विविध छन्दों मे रचनायें की हैं उसे राजस्थानी की 'डिंगल' काव्य शैली कहा जा सकता है। राजस्थानी भाषा की 'मारवाडी' बोली को कवियो ने डिंगल काव्य के सशक्त वाहन के रूप में विकसित किया था। इसका मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि मारवाडी के विस्तृत क्षेत्र में ही अधिकाश चारण कवियो का मूल निवास रहा। डिंगल से पूर्व इस भाषा का नाम क्या था यह निर्णयात्मक रूप से नही कहा जा सकता। हा, भाषाविज्ञानी इस बात पर सहमत हैं कि वह भाषा गुजरात तथा राजस्थान मे समान रूप से व्यवहृत थी। आधुनिक विद्वान उस 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' या 'जूनी गुजराती' अथवा 'मारु गुर्जर' नामो से अभिहित करते हैं। उस सम्मिलित परिवार की भाषा का पृथक्करण सोलहवीं शताब्दी के समाप्त होते-होते प्रारभ हो गया था। पर एकाध शताब्दी तक पृथक् हुई इकाइया भी सरलता से एक-दूसरे भाग मे पढी लिखी जाती थी। यही कारण है कि ईसरदास (सोलहवीं शताब्दी), साया झूला (सत्रहवी शताब्दी) तथा दुरसा आढा (सत्रहवी शताब्दी) की रचनायें गुजरात तथा राजस्थान मे समान रूप से प्रचलित थी। दुरसा ने नवानगर के कुमार 'अज्जा' के वीरगति प्राप्त करने पर 'गजगत' नामक छन्द मे रचना की थी, यह तथ्य इस धारणा की पुष्टि करता है।

'डिंगल' की प्रमुख विशेषतायें निम्न प्रकार बताई जाती हैं—

1 मूर्धन्य ध्वनि वाले वर्णों का बहुश प्रयोग, यथा—ळ, ट, ठ, ड, ढ, ढ, ण।
2 वर्णों को द्वित्त करने की रीति—कज्ज, कम्म, जम्म, ध्रम्म, पळच्चर, मज्झ, पावक्क, उप्पम, जोतिक्क।
3 तणो-तणी-तणा, हदो हदी हदा, सदो-सदी-सदा, चा चो-ची, केरा-केरी-केरो जैसे सबध कारक परसर्गों का प्रयोग।
4 शब्दो को विकृत करने की रीति—विरळवाण (विद्वान), जुजठळ (युधिष्ठिर)।

5 अनुकरणात्मक शब्दों का बाहुल्य—धड़ाधड़, धमाधम, ढमढम, रड़ब्बड़, खड़बखड़, तड़तड़।
6. करन्ती (करती हुई), पढ़न्तो (पढ़ता हुआ), चढ़न्ता (चढ़ते हुए), जैसे रूपों का गठन।
7 श, ष, स—तीनों के स्थान पर केवल दन्त्य 'स' का प्रयोग—श्रावण (सावण), शलाका (सळाका), विष (विस या विख), आशा (आसा), ऋषि (रिसि)।
8 'ऋ' के स्थान पर 'रि' का प्रयोग – ऋण (रिण), ऋच्छ (रीछ), ऋतु (रितु)।
9 'स्मृ' 'कृ' आदि शब्दों में आई हुई 'ऋ' का पृथक्-पृथक् रूपों में प्रयोग—स्मृति (समृति, सम्रिति), कृति (क्रति), कृपा (किरपा), कृष्ण (क्रस्ण, क्रिस्ण)।
10 'रेफ' के प्रयोग का विकृत रूप—दुर्लभ (दुरळभ), कीर्ति (कीरत), धर्म (धरम), कर्म (करम या क्रम), निर्मल (निम्रळ, निरमळ)।
11. कहीं-कहीं 'ए' का 'हे' में परिवर्तन—एकठा—हेकठा, एका—हेका, एकल—हेकल।
12 'स' का 'छ' में परिवर्तन-तुलसी—तुळछी, अप्सरा—अपछरा।
13. विशिष्ट काव्य-शब्दावली का गठन—समोभ्रम (समान), बियो (दूसरा), रायागुर (राजाओं में श्रेष्ठ), धजबध (ध्वजा धारण करने वाले), तुहाळा (तुम्हारा), त दिन (उस दिन), जुजडी (कटारी), धाराळी (कटारी), अभनमो (अभिनव), कमळ (मस्तक)। ऐसे शब्द सैंकड़ों की सख्या में है जिन्हें केवल काव्य में ही प्रयुक्त किया जाता है। इन्हीं के कारण कुछ विद्वान 'डिंगल' की काव्य-शैली को 'डिंगल भाषा' के रूप में मान्यता देना चाहते हैं। वस्तुत डिंगल का मूल ढाचा राजस्थानी व्याकरण का ही है। इसके विशिष्ट प्रयोगों के कारण दूसरी काव्य-शैलियों से इसका पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है।

भाषा की इस विशिष्ट शैली के अतिरिक्त दुरसा की काव्य-भाषा में संस्कृत, फारसी, अरबी, तुर्की आदि के तत्सम व तद्भव शब्दों तथा शुद्ध देशी शब्दों की भी भरमार है। दुरसा के समय तक मुस्लिम सभ्यता और सस्कृति की जड़ें देश के इस भाग में बहुत गहरी चली गई थीं। लगभग छह सौ वर्षों के इस सतत साहचर्य से जो विदेशी शब्द भाषा में घुल-मिलकर सामान्य बोलचाल के अंग बन गए थे उनका तो खुलकर प्रयोग हुआ ही है, पर दरबारी और सामती संस्कृति के बहुसख्यक शब्द भी आने स्वाभाविक हैं। उपर्युक्त अनेकविध शब्दों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

तत्सम संस्कृत

सांगोपांग, कुत, अभग, रवि, गिरिवर, वात, भूतल, तरुवर मरण, कृपाण, प्रसन्न ।

अरबी-फारसी-तुर्की (तत्सम एवं तद्भव) शब्द

मजबूत, फतै, तरफ, ताजा, दरगाह, कलमा, मसीत, नका आलम, नवरोज, आतस, पतसाह, फोज, तखत, सोर, हुकम, फरमान, सुरताण, तुरक, जग, हकीम, सादिम, मरद, दुनीयाण, खान, पैमाल ।

तद्भव संस्कृत शब्द

मत्थ (मस्तक), सायर (सागर) माण (मान), राकस (राक्षस), निकदण (निकदन), सेस (शेष), ग्रहित्ता (गृहीता), अमरित (अमृत), प्रजाळिया (प्रज्वलिता), भाणेज (भागिनेय), सींचीयै (सिंचितव्यम्), विसराम (विश्राम), वरन्न (वर्ण) दुआरि (द्वारे) ।

देशी शब्द

उरडियो, रोद, दुरवेस, घमरोळ, धमचक्क, रडव्वड, आडा, अनड, दाटक, दोयण, धींहडी, पधारो, प्राझा । इनमे से भी अधिकाश तद्भव हैं ।

जैसा कि सभी डिंगल कवियो मे देखा गया है, दुरसा ने भी काव्य प्रयोगों में पर्याप्त स्वच्छदता बरती है । सभवत इनका तत्कालीन कवि-समाज मे प्रचलन होने लगा था ।

कुछ स्वच्छदतायें इस प्रकार हैं—

1 तुकों के लिए वर्णों को द्वित्त करना—राजन्ना, नन्ना, भवन्ना, लगन्ना, करन्ना आदि ।

2 वर्णों का दीर्घीकरण या ह्रस्वीकरण—तुझ (तुम्हारे तुझ), पहाड (पाहाड), नखत्र (नाखत्र), समद (सामद), एकोई (एकोइ), प्रासाद (प्रसाद), जमी (जम्मी), नदी (नदि) ।

3 'ह' 'ज' 'स' आदि वर्णों का पादपूर्ति के लिए निरर्थक प्रयोग ।

4 शब्दों की विकृति—महो, इळा (महियळ), शशि (सिसहर), दुनिया (दुनियाण), नदी (नदीयाण) ।

आंशिक रूप से यह प्रवृत्ति मूलत राजस्थानी व्याकरण और भाषा विज्ञान की रही है, पर काव्य-भाषा मे इसको 'अति' की सीमा तक पहुचाने तथा अनेक दुरूह प्रयोग करने का कार्य डिंगल कवियों ने किया है ।

यह सब कुछ होते हुए भी दुरसा के काव्य मे संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव

शब्दों का बाहुल्य है। इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने पूर्वकालीन कवियों की रचनाओं का अध्ययन किया था तथा स्वय उन्हें सस्कृत शब्दों का अच्छा ज्ञान था। उस समय तक सभवत काव्य-भाषा अपना सपर्क परपरागत अपभ्र श भाषा से बनाये हुए थी जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दो की बहुलता रहनी स्वाभाविक ही है। ग्रामीण क्षेत्रो मे, जहा आक्रामक सस्कृति का प्रभाव धीरे-धीरे ही हो पाता है, परपरागत शब्दावली का चिरकाल तक टिके रहना भी एक तथ्य है। दुरसा ने अपने ग्रामीण आधार से भी इस शब्दावली को प्राप्त किया होगा। दुरसा की भाषा से यह स्पष्ट आभास मिलता है कि वह भारत के पारपरिक काव्यकारों की सुसस्कृत एव परिमार्जित शब्दावली का ही परिवर्तित रूप है। इससे उनके काव्य को देश की काव्य-परपरा से जुडा हुआ और उस अक्षुण्ण सास्कृतिक क्रमबद्धता की एक कडी के रूप मे देखा जा सकता है। डिंगल कविया द्वारा किए गए काव्य-प्रयोगो की रूढियो को पूर्ववर्ती—सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्र श-भाषा के काव्यों मे खोजने से इस परपरा का पता लगाया जा सकता है।

यद्यपि 'डिंगल' काव्य-भाषा के रूप मे एक निराली और विशिष्ट भाषा थी, पर प्रतिभासम्पन्न कवि उसमे भी लौकिक तत्त्वो का कुशलतापूर्वक समावेश कर सकते थे। इस प्रकार के लोक-प्रचलित प्रवादो, लोकोक्तियों और मुहावरो से भाषा अधिक सक्षम एव प्राणवत हो उठती है। दुरसा इस तथ्य के प्रति पूर्णतया सजग लगते हैं। उन्होने बडे सहज भाव से अनेक स्थानों पर ऐसे लोकप्रचलित प्रयोग किए हैं जो उनकी समग्र भाषा से कटे-छटे नही लगते हुए उसी ढाचे म एकाकार हुए प्रतीत होते हैं। ऐसे कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

मुहावरे—

काजळ री कोर (काजल की कोर), जोखम पूरि (पूरा खतरा), वाय कुवाय (अच्छी-बुरी हवा), रज राखे रजपूत (क्षत्रिय क्षात्रधर्म का निर्वाह करता है), खेलसिर ऊपर खेले (सिर के बल पर खेल खेलता है), नयणे मेले नयण (आख मे आख गडाकर), भर जोवन (पूर्ण यौवन मे), सोळ सिणगार (सोलह श्रृगार), मेहमातो झड माडे (पूरे वेग से वर्षा की झडी लगती है), धोवा भरिभरि धूळ (दोनों हाथों की अगुलियों मे रेत भर कर)।

कहावतें—

'जिण रो जस जग माय, जिण रो जग धन जीवणो'
(ससार मे जिसका यश हो उसका ही जीवन धन्य है।)
'सफळ जनम सुदतार, सफळ जनम जग सूरमा'
(अच्छे दानवीरों और शूरमाओं का जीवन ही सफल है।)

'गढ़ ऊचो गिरनार' (गिरनार का पर्वत बहुत ऊचा है।)
'रघुकुल उत्तम रीत' (रघुकुल की रीति बडी उत्तम है।)
'पराधीन दुख पाय' (पराधीन रहने वाला दुख पाता है।)

भाषा मे इस प्रकार के लोक-तत्त्व के समावेश से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि बहुश्रुत था और समाज के विभिन्न वर्गों से उसका निकट का साहचर्य ही नही उनका सूक्ष्म अध्ययन भी था।

दुरसा की काव्य-शैलियो मे पारपरिकता का निर्वाह ही अधिक है। उत्तर डिंगल काल मे सूर्यमल्ल ने जिस प्रकार 'वीर सतसई' मे शैलीगत प्रयोग किया, अथवा दुरसा से पहिले ईसरदास ने किया, वैसी कोई नई शैलीगत उद्भावना तो नही दिखाई देती, लेकिन दुरसा ने अपनी कल्पनाओं, उद्भावनाओ और प्रतिभा के मेल से अन्य प्रकार से अपने काव्य को उत्कृष्ट कोटि का बनाने मे कोई कसर नही छोडी है।

दुरसा के काव्य म मुख्य रूप से शैलीगत प्रयोग निम्न प्रकार पाये जाते हैं—

(1) संबोधनात्मक विरदप्रधान शैली—जिसे डिंगल काव्य शास्त्र के आचार्यों ने 'सनमुख उकत' (सम्मुख उक्ति) भी कहा है—

मान, बडा पख ताहरा, बैवे विरदाळा।
तू आबेर उजाळणा, जुग जेण उजाळा॥
छत्तीसा ठकुराइया, तू मान वडाळा।
माना वड्डा तुझ्झ थे गिरधरण गुवाळा॥

"हे मानसिंह, तेरे दोनों ही पक्ष (मातृ एव पितृ पक्ष) बडे यशस्वी है। तू आमेर के यश को फैलाने वाला है, तेरा यश सारे युग म व्याप्त है। तू छत्तीस राजवशो मे सबसे बडा है। तुझसे बडा तो गिरिधर ग्वाल (कृष्ण) ही है—अथवा गिरिधर धारण करने वाले गोविंद ने तुझसे ही बडप्पन पाया है—(यह सकेत सभवत मानसिंह द्वारा वृन्दावन मे बनाए गए गोविन्ददेव के विशाल मदिर के कारण किया गया है।)"

(2) सामान्य प्रशस्तिपरक शैली—जिसे 'परमुख उक्त' भी कहा गया है—

सालव सहत सनाह, षमग सहेता पाखरी।
ढाला सू मैंगळ मुगल, वीरम की हयवाह॥

"कवच सहित शत्रुओं, पाखर सहित घोडो तथा ढालो से ढके हाथियो और मुगल सैनिको पर वीरम ने खड्ग-प्रहार किया।"

(3) मरसिया (शोक-काव्य) शैली—यह किसी काव्य-नायक की मृत्यु के उपरात उसके गुणों को स्मरण करते हुए कहा जाता है—

महाशूर सुदतार रायसिंघ बिसरामियो।
विटप [illegible]

कूजरा तणी मोहताद करसी कवण।
कवण काडा तणो भाज करसी।।

'महान वीर तथा बडे दानी रायसिंह ने (मृत्युजन्य) विश्राम ग्रहण कर लिया। अब सेनारूपी कुमारी का युद्धस्थल में कौन वरण करेगा? हाथियों की बख्शीश कौन करेगा और कोड पसावों का दान कौन देगा?"

(4) रूपकात्मक शैली— रूपक' अलंकार के माध्यम से वर्णन करने की रूढ़ि डिंगल कवियों को बड़ी प्रिय रही है। दुरसा ने भी इस रीति का खुलकर प्रयोग किया है। साग और निरग रूपकों की छटा उनके काव्य में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। 'कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत" नामक रचना तो सपूर्ण रूप से विवाह के रूपक म ही आबद्ध है। 'रामदास चादावत' के एक गीत मे 'मरण' रूपी पाहुने की मनुहार करने का रूपक बाधा है। एक अंश निम्न प्रकार है—

परठि वागो जरद, गरद सूंघो पहरि,
मिलण कजि साथि लै, वडवडा मीर।
प्राण तो तिको अत, आवियो प्राहुणो,
धीरहर आभरण, ऊठि वरवीर ॥

"वागा धारण कर, और गर्द ढका हुआ ही कवच पहिन कर बडे-बडे अमीरों को साथ ले, मिलने के लिए चलो। प्राण का अन्त करने वाला 'मरण' पाहुन बनकर आया है, हे धीर के पौत्र, (कुलके) शृगार श्रेष्ठ वीर, उठो!'

(5) परिगणनात्मक शैली—प्रशस्तिपरक काव्य मे उपमाओ की झडी-सी लगान की रीति ॥ उपमेय क गौरव म वृद्धि करने की रीति अपनाई गई। पौराणिक और इतिहासप्रसिद्ध व्यक्तियों स समानता या विशिष्टता बतान वाले ऐसे वर्णन वैसे तो अलकार सयोजन के अन्तर्गत आत ही हैं पर यह शैली विशेष कवि की प्रिय होने के कारण इस रुढि के रूप म अपनाया गया है। जहा अलकार-सयोजन नही है वहा भी नाम परिगणना की यह रीति अपनाई गई है—

हो मीरा, हो मीरजा, खाना, सुरताणा।
हो रावा, हो रावता, हो रावळ राणा।
हो तुरका, हो हिंदुवां, दाखा दीवाणा।
छरा न लग्गो मानको, कुण तास घराणा ॥

'चाहे मीर हो, मिरजा हो, खान या सुल्तान हो, राव हो, रावत हो या रावल, और राणा हो, तुर्क हो, हिन्दू हो या दीवान कहे जाते हो, मानसिंह का प्रहार जिस पर नही हुआ हो, ऐसा कौन सा घराना है?'

'मानसिंघ रा झूलणा' नामक प्रशस्ति काव्य मे तो आदि स अत तक इसी परिगणनात्मक शैली के सहारे ही यशोगान किया गया है।

(6) चित्रात्मक शैली—इस शैली से किसी घटना, कार्य-व्यापार या व्यक्ति का एक चित्र-सा खीचने का प्रयास किया गया है। वे एक ही साथ दिखाई देने वाले हो अथवा लम्बी अवधि के विस्तार मे व्याप्त हो, समस्त कथ्य को चित्रकार की तूलिका की भाति, रेखाओ मे समेट कर रख देने की यह कला प्रतिभासम्पन्न कवियो के ही वश की बात है। दुरसा ने ऐसे अनेक चित्र बडे स्वाभाविक रूप से खीचे है—

हूकळ पोळि उरडियो हाथी,
भिछटी भीडि निराळी।
रतन पहाड सणै सिररोपी,
ग्रूहड़िये धाराळी॥

"हुकार करता हुआ हाथी द्वार की ओर वेगपूर्वक आया तो भीड तितर-बितर हो गई। 'ग्रूहड' के वशज 'रतनसिंह' ने पहाड रूपी हाथी पर अपनी तलवार से प्रहार किया।"

इसमे मस्त हाथी के वेगपूर्वक आने, भीड के तुरत भग जाने और एक सच्चे वीर के खड्ग-प्रहार का स्पष्ट चित्र उभर उठता है। यह चित्रोपमता प्राय डिंगल कवियों के वर्णनो मे मिलती है। 'किरतार बावनी' नामक काव्य मे भी विभिन्न व्यवसायो का समस्त कार्य-व्यापार चित्रवत् खीचकर रख दिया गया है—

रितु बरसाळा राति, घोर अधार होय घण,
बीज चमक्के वळे, मेहझड माचि सरावण,
चोर अरध निस चाल, बार धनवत रे बैसै,
भेदै पत्थर भीत, पनग ज्यू माहे पैसै,
गाम रो धणी तिण नै ग्रहै, धड साजे सूळी धरै
करतार पेट दूभरि कियो, सो काम एह मानव करै॥

"*वर्षा ऋतु की रात्रि मे जब घनघोर अधकार रहता है, ऊपर से बिजली* चमकती है और श्रावण महीने की झडी लगी रहती है, ऐसे समय मे आधी रात को चलकर चोर धनिक व्यक्ति के दरवाजे पर जाकर बैठता है। पत्थर की बनी भीत को वेधकर सर्प की तरह उसमे प्रवेश करता है। पर गाव का स्वामी उसे पकडकर धड सहित सूली पर रख देता है। भगवान् ने पेट-भराई बडी कठिन कर दी है जिसमे मनुष्य को ऐसे काम करने पडते है।"

ऐसे वर्णनो मे कोई भी रसज्ञ भावक सम्पूर्ण कार्य-व्यापार को चलचित्र की तरह आखो मे उतार सकता है।

(7) उद्बोधनात्मक शैली—वीर काव्य ही डिंगल कवियो का उपजीव्य था। अत क्षत्रियो को वीरोचित कृत्य के लिए प्रोत्साहित करना उनका प्रधान लक्ष्य रहा है। इस कार्य मे उद्बोधनात्मक शैली विशेष सहायक होती है। युद्ध-

स्थल मे वीरवचनो द्वारा प्रेरित करना तो एक रोमाचकारी कार्य है ही, पर अन्य प्रसगों पर भी अन्याय, अत्याचार आदि के विरुद्ध आक्रोश उत्पन्न करने के अवसर भी कवियो ने चूके नहीं। दुरसा ने भी शैली के रूप मे इसे अपनाया है। 'सोलकी माला सामदासोत' के गीत मे ऐसा ही प्रेरणास्पद उद्बोधन द्रष्टव्य है—

पडै भार मेवाड पतिसाह पारभीयों,
भाखरां ऊपरै झिगै भाला।
अमर रा भीच जमराय तो ऊपरा,
मछेअर आवियो, ऊठ माला॥

' मेवाड पर सकट आ गया है, बादशाह ने युद्ध प्रारभ कर दिया है, पर्वतो पर भाले चमक रहे हैं, अमरसिंह के प्रबल वीर तुझ पर यमराज स्वय आ गया है, हे माला, उठो!"

डिंगल काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने शैली (उक्ति) के अनेक प्रकार व्याख्यायित किए हैं। सन्मुख, परमुख, परामुख, स्रीमुख और मिश्रित नामक इन उक्तियों मे प्रथम तीन के शुद्ध और गर्भित तथा स्रीमुख के प्रसग मे कल्पित, इस प्रकार नौ भेद होते हैं। ये उक्तियां प्रकारान्तर से काव्य-शैलिया ही कही जा सकती है। इनमे से प्रथम दो को अन्यत्र विवेचित किया गया है। डिंगल गीतों की रचना-प्रक्रिया मे 'उक्ति' की तरह ही 'जथा' नामक शिल्प भी बताया गया है। ये 'जथायें' ग्यारह प्रकार की होती हैं। 'जथा' से तात्पर्य कथ्य के यथानिर्दिष्ट निर्वाह से है। उदाहरण के तौर पर 'सर' नामक 'जथा' के अनुसार गीत के दोहो की पहली तीन तुको मे जो वर्णन किया जाए उसका पूर्ण निर्वाह प्रत्येक दोहे की चौथी तुक म होना चाहिए। गीतों का यह शिल्प विस्तृत विवेचन की अपेक्षा रखता है। दुरसा ने एक कुशल गीतकार के नाते निश्चय ही इस काव्य-शिल्प का बखूबी निर्वाह किया है।

अध्याय 5

शिल्प और तत्त्व



छंद—दुरसा ने सभी रचनायें परपरागत छन्दो मे की हैं। दोहा, सोरठा, छप्पय आदि छदो के अतिरिक्त डिंगल गीतो के अनेक प्रकारो का प्रयोग किया गया है। नीसाणी, झूलणा, भाखडी, सावझडो, छोटो साणोर, पखाळो, दुमेळ, पालवणी, रूपग, गजगत, खुडद साणोर, बडो साणोर, वेलियो, प्रहास, अरटियो आदि गीतो के कुछ प्रमुख भेद है जिनमे इनकी रचनायें हुई है। दूहो मे भी 'साकळियो' नामक भेद मे 'वीरमदे' सोलकी रा दूहा' की रचना की गई है। डिंगल छद-शास्त्र मे इन सभी भेदो के लक्षण विस्तारपूर्वक बताये गए हैं। ये लक्षण दुरसा कृत गीतो मे भी ठीक बैठते हैं। उदाहरण के तौर पर यहा किसना आढा कृत 'रघुवरजस प्रकास' नामक छन्द-ग्रथ से कुछ छदों के लक्षण देकर दुरसा के गीतो की परीक्षा की जाती है—

'रघुवरजस प्रकास' (पृ० 219) मे लिखा है कि सोलह पक्तियो के छद की पहली पक्ति जब उन्नीस मात्रा की हो तथा शेष 15 पक्तिया सोलह-सोलह मात्राओं की हों, तुकाल मे गुरु-लघु का नियम न हो, और हर चार पक्तियो की तुकें मिलें, तो 'पालवणी' नामक छद होता है।

'पालवणी' (गीत गोपालदास सुरताणोत रो)

बहणो सुजस तणें रवि बाईं=16 मात्रा
दूजो नको तुहाळो दाईं=16 मात्रा
तू समपै सौ गामा ताईं=16 मात्रा
पडलो एक किसू तो पाईं=16 मात्रा

इस छद मे, जो 'पालवणी' के प्रारभ को छोडकर शेष अश का एक भाग है, प्रत्येक पक्ति मे सोलह मात्रायें हैं तथा चारो तुकें भी मिलती हैं।

'खुडद साणोर'—(रघुवरजस प्रकास—पृ० 204-205)

जिस छद का पहला चरण 18 मात्राओ का, दूसरा 13 का, तीसरा 16 का तथा चौथा 13 मात्राओं का हो और शेष सभी चरण क्रमश 16-13 के हों, वह

'छोटा साणोर ह् सगमा' कहलाता है। तुकात मे दो लघु होते है। इसे ही 'खुडद साणोर' भी कहते हैं

(गीत देवडा प्रथीराजजी रो)

ताढा प्रति अन्हो माठा तीन्हो—	=	18
सवदी उलट अवेव सिव	=	13
त्रिसणा रुधिर खीजिया पूजें	=	16
पीयल रया रीझै पुहिव	=	13
सन्नाहिए भडे मूजावत	=	16
रिमचै सिरि रेडै रगत	=	13
नावै दाइ साध वलि नारी	=	16
भावै तो सरिखा भगत	=	13

इन पक्तियो मे गीत के उपर्युक्त लक्षण बिल्कुल सही उतरत है। इसी प्रकार अन्य सभी छदो की परीक्षा करने से भी पता चलता है कि दुरसा का छद-शास्त्र का अध्ययन सागोपाग था तथा छद वनाने का उनका कौशल उच्च कोटि का था। डिंगल छदों की इतनी विविधता के होते हुए किसी भी सिद्धहस्त कवि को नए छन्दो की आवश्यकता नही पड सकती थी। हा, अप्रचलित छदो का प्रयोग एक अन्य प्रकार की क्षमता की अपेक्षा अवश्य रखता है। दुरसा ने 'गजगत' तथा 'रोमकद' जैसे छन्दो का प्रयोग करके इस सामर्थ्य का भी प्रदर्शन किया है। पर यह बात याद रखने की है कि दुरसा अत्यधिक लोकप्रिय कवि थे, अत. उनके द्वारा अधिकाशत अधिक प्रचलित छदो म ही रचनायें की गई है। दूहा, सोरठा, छप्पय, साणोर (सभी भेदां म) तथा सावझडो ऐसे ही छद थे जिनका तत्कालीन कवि-समाज मे वडा प्रचलन था। यही छद दुरसा के भी प्रिय थे।

शब्दालकार

डिंगल के काव्य-शास्त्र मे सबसे प्रधान शब्दालकार 'वयण सगाई' कहा गया है। यह एक प्रकार का अनुप्रास होता है जिसमे वर्ण की अनेक बार उपर्युक्त आवृत्ति से वर्णन में सौन्दर्य-वृद्धि होने की वात मानी गई है। 'रघुवरजस प्रकास' नामक छद ग्रथ मे इस अलकार का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि छद के किसी भी चरण के पहले शब्द के आदि अक्षर की आवृत्ति उसी चरण के अतिम शब्द के आदि अक्षर में हो तो 'वयण सगाई' अलकार होता है। वयण (वचन) सगाई (सबध) की अर्थमूलक व्याख्या उसके बाह्य रूप से ही सबध रखती है। इसे एक प्रकार का अनुप्रास ही कहा जा सकता है। इस महत्त्वपूर्ण अलकार के अनेक भेद किए जाते हैं। आदि अक्षरो की भाति जब मध्य और अन्त्याक्षरो का आदि से सबध होता है तो दूसरे-तीसरे भेद माने जाते हैं। मुख्य भेद सात ही माने गए

हैं, पर प्रस्तार के द्वारा शताधिक भी करके बताए जाते हैं।

'वयण सगाई' सिद्धहस्त कवियो की रचनाओ मे आनी ही चाहिए ऐसी मान्यता रही है। पर, इसके विपरीत सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे प्रतिभासपन्न कवि ने 'वयण सगाई' की अनिवार्यता को नकारा है। उनका कहना है कि वीर काव्य रूपी पावक मे यदि 'वयण सगाई' को समाप्त भी कर दिया जाए तो कोई दोष नही, बल्कि रस का पोषण ही होगा—

वैणसगाई वाळिया, पेखीजै रस पोस।
वीर हुतासण बोल मे, दीसै हेक न दोस॥

पर 'वयण सगाई' को नकारने वाला यह दोहा स्वय उत्तम प्रकार की 'वयण सगाई' का श्रेष्ठ उदाहरण है। वास्तव मे, वयण सगाई के बिना भी प्रभावकारी वर्णन सभव तो है, पर यह भी निश्चित है कि वयण सगाई के प्रयोग से किसी भी वर्णन की सौन्दर्य वृद्धि तो होती ही है। 'रघुनाथरूपक' नामक छन्द ग्रथ के रचयिता 'मछ कवि' ने यहा तक कहा है कि वयण सगाई का प्रयोग होने पर दूसरे काव्य-दोष ढके जाते हैं। जिस प्रकार वश-परपरा का वैर भी विवाह-सबध से सदा के लिए मिट जाता है, उसी प्रकार वयण सगाई से किसी भी प्रकार के दग्धाक्षर आदि के दोष भी मिट जाते है—

खून किया जाणै खलक, ह्राडवैर जो होय।
वर्ण सगाई वैण तो, कळपत रहै न कोय॥

ऐसे महत्वपूर्ण अलकार का दुरसा के द्वारा सम्मानित होना आवश्यक ही था। उनकी कुछ रचनाओ से इस अलकार के समावेश की पक्तिया देखिए—

"सेना अणी सिनान, धारा तीरथ मे धसै"

(विरुद छिहत्तरी)

जिके मरजिया जात, पूर सायर मे पैसे।
मागे तन रो मोल, बाधि कड जळ तळ बेस॥

(किरतार बावनी)

हुकळ पोळ उरडियो हाथी, निछटी भीडि निराळी।
रतन पहाड तणै सिर रोपी, धूहडिया धाराळी।

(रतन महेसदासोत रो गीत)

अन्य शब्दालकारो—यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि की ओर डिंगल आचार्यों ने विशेष ध्यान नही दिया है। किन्तु छेक, वृत्ति, श्रुति और अन्त्य नामक अनुप्रासो मे उनका मोह अवश्य रहा है। 'वयण सगाई भी एक प्रकार से 'छेकानुप्रास' ही है। वृत्त्यनुप्रास भी बहुश प्रयुक्त हुआ है। एक वर्ण की अधिक बार अथवा अनेक वर्णों की अधिक बार आवृत्ति करने से बनने वाले इस अनुप्रास मे माने जाने वाली 'उपनागरिका', 'परुषा' और 'कोमला' नामक वृत्तियों मे से 'परुषा'

ही डिंगल कवियों को विशेष प्रिय रही है। इस वृत्ति के वर्ण—ट, ठ, ड, ढ, रेफ सहित संयुक्ताक्षर और द्वित्त आदि—वीररस के वर्णनों के लिए उपयुक्त समझे गए हैं। दुरसा ने भी परुषा वृत्ति के उपर्युक्त विधान की पालना करते हुए प्रचुर रचनायें की हैं। एकाध उदाहरण से यह मत स्पष्ट हो सकेगा—

ग्रीध झडपड पखझड हुव पीर हडवड ।
भीच अण पड वाज घड होय रुड रडवड ॥
(राव सुरताण रा झूलणा)

मालदे अूठियो दूठ वेढोमणो,
ताधिवा नरसमंद सार अणताय
भुजाडंड ओडवे फौज अूडळ भरे,
वला आगळ हुवो—वला रो बाप ॥
(सोलकी माला सामदासोत रो गीत)

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में 'ड' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति से ओजगुण की परिचायिका परुषा वृत्ति का निर्वाह हुआ है। प्रसगवश उपनागरिका और कोमला वृत्तिया भी काम मे ली गई है, यथा—

"नवली सुदरि नार, मद्दा अति रूप मनोहर"
(उपनागरिका)
"वाहण चोरिय वस, चोर मिलि चोरण चासै।"
(कोमला)

यहा आनुनासिक और मधुर ध्वनि-वर्णों के कारण 'उपनागरिका' और कठोर वर्णों के अभाव के कारण 'कोमला' वृत्ति कही जाएगी।

उकत, जथा और दोष—

काव्य-शास्त्र के आचार्यों द्वारा श्रेष्ठ काव्य की जो अन्य कसौटियां उक्त (उक्ति), जथा (पुनरुक्ति) तथा काव्य-दोषों का निवारण बताई गई है, उनका भी पूर्णत निर्वाह दुरसा के काव्य में मिलता है। उक्ति के भेदों—सनमुख, परमुख, स्री मुख, मिश्रित, तथा शुद्ध एव गर्भित आदि विभेदों—की विवेचना इस पुस्तक में अन्यत्र की जा चुकी है। इसी प्रकार ग्यारह जथाओ तथा ग्यारह दोषों की भी चर्चा लक्षण ग्रंथो ने की है। कुछ प्रमुख जथायें और दोष निम्न प्रकार वर्णित है —

'वरण-जथा'—जहा नख से शिख तक तथा शिख से नख तक वर्णन हो उसे 'वरण जथा' कहते है।

'अहिगत जथा'—जिस गीत के प्रथम चरण के प्रारम्भ मे जिस पदार्थ का वर्णन हो, उसका सबध चरण के अत मे भी स्पष्ट हो तथा वर्णन सर्प की गति की तरह चले, व 'अहिगत जथा' होती है।

"अधिक जया'—जहा वर्णन मे क्रम से अधिक से अधिक वर्णन हो अथवा एक, दो, तीन, चार—इस प्रकार सख्यानुसार क्रमश वर्णन हो, वहा दोनो प्रकार की अधिक जयायें होती है।

ग्यारह काव्य-दोषो के नाम—अध, छवकाळ, निनग, हीण, पागळो, जात-विरुद्ध, अपस, नाळछेदक, पखतूट, बधिर, अमगळ हैं। जिस छद मे एक से अधिक भाषाओ के शब्दो का प्रयोग हो वहा 'छवकाळ', जहा नायक के माता-पिता का नामोल्लेख न होने से पहिचान मे भ्रम हो वहा 'हीण', तथा जहा वर्णन की आनुक्रमिकता का निर्वाह न हो पाए वहां 'निनग' दोष होता हैं। इसी प्रकार शेष दोषो की भी व्याख्या की गई है।

दुरसा के काव्य का बारीकी से अध्ययन करने पर ही इस विषय मे निर्णयात्मक रूप मे कहा जा सकता है, पर सरसरे ढग से देखने पर ऐसे कोई दोष नही पाए जाते। यदि 'उक्त', 'जया', 'दोष' तथा छद-शास्त्रों की अन्य अनिवार्यताओ को लेकर दुरसा के काव्य म कही कोई कमी पाई जाती, तो कवि समाज निश्चय ही उन्हें वह सम्मान नही देता जो उन्हें प्राप्त था।

अर्थालकार

डिंगल कवियो के प्रिय अर्थालकारों मे उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, अनन्वय, उदाहरण, उल्लेख, सदेह, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, दृष्टात आदि के नाम गिनाए जा सक्ते हैं। 'रूपक' इनमे समवत सर्वप्रथम स्थान का अधिकारी है। वीरो के युद्ध-वर्णनो मे अनेक प्रकार के रूपकों की कल्पनायें की गई हैं। दुरसा द्वारा प्रयुक्त कुछ प्रमुख अर्थालकारो के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

'रूपक'

(उपमान मे उपमेय का निषेधरहित आरोप)

अकवर समद अथाह, तिह डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ो तिण माह पोयण फूल प्रतापसी।।

(विरुद छिहत्तरी)

"अकबर रूपी अथाह समुद्र मे सभी हिन्दू-तुर्क डूब गए हैं, पर मेवाड का राजा उसमे कमल पुष्पवत् तैरता है।"

व्यतिरेक

(उपमेय मे उपमान की अपेक्षा उत्कर्ष का कथन)

अण अधिप अमिट राह अणग्रह अत,
अवड़े यह बादळो अपार।

जगत तपै सिर दूजो जगचख,
जस जगमगै तणो जगमाल ॥

"जगमाल का यश ससार पर दूसरे सूर्य की तरह जगमगाता है। यह अस्त नही होता, इसकी राह अमिट है, इसे राहु नही ग्रसता और बादलों से यह ढका नही जाता"—यहा वास्तविक सूर्य की अपेक्षा नायक के यश रूपी सूर्य की विशेषता बताई गई है।"

अत्युक्ति

(शौर्य और औदार्य का अत्यत मिथ्या वर्णन)

अह माथै राग आम लग अूचो।
नवखडे जस झालर नाद
रोप्या भला रायपुर राणा
पडै न सासण तणा प्रसाद
(राणा अमरसिंह रो गीत)

"शेष नाग के सिर पर जिसकी नीव है, जो आकाश तक ऊचा है, नवो खडो मे जिसकी यश रूपी झालर का निनाद सुन पडता है, ऐसे "शासन" रूपी महल को राणा ने रायपुर मे बनवाया"—यहा शेष नाग, आकाश और नवो खडो की असभवताओं के कारण औदार्यसूचक अत्युक्ति है।

दुरसा जैसे प्रतिभासम्पन्न कवि के काव्य मे स्थान-स्थान पर अलकारो की छटा प्राप्य है। अलकार-शास्त्र का कोई भी विद्यार्थी सरलता से इनमे अनेक अलकारो के अच्छे उदाहरण खोज सकता है। डिंगल कवियो की वर्णन-शैली भारतीय आर्य काव्य परपरा से जुडी रही है। इनके द्वारा प्रयुक्त रूढियो के स्रोतो की खोज करने के लिए प्राचीन सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश काव्यो का परिशीलन मनोयोग- पूर्वक किये जाने की आवश्यकता है।

रस—

डिंगल काव्य का प्रधान रस "वीर" ही है। दानवीर धर्मवीर, युद्धवीर आदि इसके अग हैं। वीर रस के वर्णनो मे ही रौद्र, वीभत्स, भयानक, अद्भुत और करुण रसो की, अगीभूत रूप मे, झलकिया दिखाई गई है। यह एक विचित्र सत्य है कि डिंगल कवियो ने शृगार के मिस भी वीर रस का वर्णन करने मे अद्भुत सफलता प्राप्त की है। "सूर्यमल्ल" की "वीरसतसई" इस दिशा मे एक श्लाघनीय प्रयास कहा जा सकता है। मध्यकालीन राजस्थानी समाज मे, जब घोडा, तलवार और सैनिक का वर्चस्व था, ऐसा ही काव्य श्रेष्ठ समझा जाता था। और फिर चारण कवियो का लक्ष्य क्षत्रियोचित गुणो के उत्कर्ष को प्रोत्साहित करना

ही होने के कारण इस प्रकार के काव्य को सम्मान की दृष्टि स पढा सुना भी जाता था। सभवत तत्कालीन क्षत्रिय समाज को इसकी आवश्यकता भी थी। इसके अभाव मे उन्हे वाछित प्रेरणा और कीर्ति का वरण करने की अभीप्सा नही होती। दूसरा प्रधान रस "शात" ही है जिसमे हर कवि ने भगवद्भक्ति विषयक रचनायें की हैं।

दुरसा के काव्य से उपर्युक्त विभिन्न रसो की बानगिया प्रस्तुत करने का प्रयत्न यहा किया जा रहा है —

युद्धवीर

कर पोरस इम बोलियो तेजल सुरताणू।
आज न मेलू जीवता, करवाण रगाणू॥

"पौरुष करके तेजस्वी सुरताण ने इस प्रकार कहा कि आज मैं जीवित नही जाने दूगा, तलवार से रग दूगा"—"राव सुरताण रा झूलणा'

धर्मवीर

गीत

कलमा बाग न सुणिये काना, सुणिये वेद पुराण सुभै।
महडो सूर मसीत न अरचै, अरचै देवल गाय उभै॥1॥
असपत इन्द्र अवनि आह्वडिया, धारा झडिया सहै धरा।
घण पडिया साकडिया घडिया, ना धीहडिया पढी नवा॥4॥
आखी अणी रहै अूदावत, साखी आलम कलम सुणो।
राणै अकबर बार राखियो, पातल हिन्दूधरमपणो॥5॥

"राणा (प्रताप)अपने कानों से यवनो की 'बाग" नही सुनता, पर वेदपुराणो के उपदेश सुनता है। वह वीर मस्जिद मे सिजदा नही करता, बल्कि देव-मदिर और गाय की पूजा करता है। इन्द्र रूपी बादशाह जब-जब पृथ्वी को आक्रांत करने के लिए शस्त्र-प्रहार की झडिया लगाता है तो राणा उसे सहन करता है। पर सकट की इन घडिया मे भी अपनी पुत्रियो को बादशाह के साथ निकाह पढ़ने के लिए नहीं भेजता। उदयसिह के उस पुत्र ने सदैव सेना का नायकत्व किया। इस बात का साक्षी सारा ससार और स्वय मुसलमान भी हैं कि प्रताप ने अकबर के समय म हिन्दू धर्म की मर्यादा बनाई रखी।"

दानवीर

महाराजा रायसिंह रो गीत

पदमण महल पोढता पहली,
ऐरावत देता इक आग।
इळपत रासै चित आलोचे,
नगनग पैडी दीधा नाग॥

"पद्मिनी के महलो मे शयन करने जाते समय पहिले के नरेश एक हाथी का दान किया करते थे, पर राजा रायसिह ने उदारभाव से हरेक सीढी पर एक-एक हाथी का दान किया।"

वीभत्स रस

"रत्त गड-गड सोख मड प्रजडाण खडखड"
"ग्रीध झडपड पखझड हुव वीर हडवड"
"भीच अणपड बाज धड हुव रुड रडवड"

"इन पक्तियो मे मृत शरीरो से रक्त का पान, गृद्धो के पखो के झपाटे, धडो और रुडो का गिरकर लुढकना आदि युद्ध व्यापार वीभत्स दृश्य उपस्थित करते हैं। राव सुरताण रा झूलणा"

करुण रस

राव सुरताण रा कवित्त

आज पडे असमान, आज धर-कंकण भागो,
आज महाउतपात, नीर धूतारे लागो।
आज कळ ऊथल्ल, आज कव आदर छूटा,
आज टळे आसण, आज सनमध विछूटा॥
"सुरताण मरण फूटो नही, हाय हाय फूटो हियो"

"आज आकाश नीचे गिर गया है, पृथ्वी का ककण फूट गया है—वह विधवा हो गई है, आज महान उत्पात से समस्त ससार मे जल-प्रलय हो गया है, पानी ध्रुव तक पहुच गया है, आज सारे ससार मे उथल-पुथल मच गई है, आज कवियो का सम्मान लुप्त हो गया है, आज प्रसन्नता जाती रही है, सबध टूट गया है। आज सुरताण की मृत्यु पर भी हे हृदय तू फटा नही, तू निरा अधा है।"

रौद्र रस

सोर धुआ रवि ढकियो, अरवद रीसाणू ।
त्रह त्रह तबक वाजिया, तीपुर सण्णाणू ॥

"बारूद के धुओ से आकाश आच्छादित हो गया है, अर्बुदाचल क्रोधित हो उठा है, "त्रह" की ध्वनि करते हुए नगाडे बज उठे हैं, तीनो पुरो मे भयत्रस्तता छा गई है ।"—"राव सुरताण रा झूलणा"

शात रस :

किरतार बावनी

विषम ताढि वापरी, जिका वन नीला जाळे,
तख खिण अरहट तेथि, हेम नीकै जळ हाळे ।
परठ पाणी ती पुरख, पाव पाणी करि प्यारा,
दुख देही दाखवै, कसी सू वाळै क्यारा ।
सीत रै जोर जळ सेवता, घड धूजै कपड़ा धरै,
करतार पेट दू भरि किया, सो काम एह मानव करै ॥

"भयकर सर्दी से जब हरे वन भी शीत-दग्ध हो जाते हैं, उस समय अरहट के बर्फ जैसे पानी मे पाव देकर फावडे से क्यारियो मे पानी देता हुआ किसान शारीरिक कष्ट उठाता है । शीत के कारण उसका सारा शरीर कापने लगता है । भगवान ने पेट को बडी कठिनाई से भरने वाला बनाया है जिसके कारण मनुष्यो को ऐसे काम करने पडते हैं—इससे भगवान की महिमा और उसकी इच्छा के प्रति मानव के आत्मसमर्पण की भावना व्यजित होती है ।"

रस निष्पत्ति के ऐसे अनेक उदाहरण दुरसा के काव्य मे खोजे जा सकते हैं । पर यह निस्सकोच स्वीकार करने योग्य है कि वीर रस ही दुरसा का प्रिय था, जैसी कि उस समय के समस्त डिंगल कवियो की स्थिति भी थी । वीर रस के नानाविध वर्णनों से दुरसा का काव्य ओत-प्रोत है । वीरतापूर्ण वचनो, ललकारो, चुनौतियों, कुल-गौरव की भावना से अभिभूत होकर की हुई प्रतिज्ञाओ, देश-धर्म और अबलाओ पर होने अत्याचारो के लिए किए गए उत्कट आवेशो, शत्रु को देख कर होने वाले उल्लासों, आदि के नानाविध दृष्टात दुरसा के गीतो-कवित्तो मे सरलता से प्राप्त हैं ।

वस्तु वर्णन—

रसों के अतिरिक्त भी काव्य मे अनेक ऐसे स्थल हैं जहा कवि का कौशल प्रकट होता है । विषयों की विविधता इसके लिए कवि की कसौटी बन जाती है । इसी मे कवि के सूक्ष्म अध्ययन और अपने समकालीन चतुर्दिक् को अपने साहित्य मे प्रतिबिम्बित करने की क्षमता का आभास मिलता है । यह दृष्टि किसी भी रस-

विशेष के वर्णनो के लिए लागू हो सकती है, जो कि कवि की रुचि और प्रतिभा के अनुसार न्यूनाधिक हो सकती है। ऐसी बहुश्रुतता सभवतः कविकर्म का एक प्रधान अग है। उदाहरण के लिए युद्ध के वर्णनो मे भी कवचो-हथियारो-घोडो-हाथियों आदि की पूरी जानकारी, युद्ध कला का परिचय, पारपरिक वर्णनो का ज्ञान, युद्ध पूर्व और समरात की रीति-आचार आदि अनेक सूक्ष्म अग-उपाग हैं जिन्हें निकट रहकर देखने वाला ही बखान सकता है। दुरसा चूकि मात्र कवि ही नही बल्कि योद्धा भी थे, और युद्धो मे लडे भी थे, अत उनके द्वारा किए गए वर्णनो मे इन सभी बातों की बारीकियां आनी स्वाभाविक है। वैसे भी दूर-दूर तक श्रीमानों, राजपुरुषो और सामतो-नरेशों से मिलने-जुलने के लिए की गई अनवरत यात्राओं मे उन्होंने जनजीवन को पर्याप्त निकटता से देखा होगा। अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों मे अभावग्रस्त जीवन बिताते समय उन्होंने बहुत से अभावो और कष्टो का स्वय अनुभव भी किया ही होगा। ऐसी ही साधनाओं ने उनको वह अतर्दृष्टि दी जो उनके काव्य मे यत्र-तत्र खोजी जा सकती है। पारपरिक भारतीय साहित्य का उनका अध्ययन भी बडा विस्तृत रहा होगा जिसे उनके काव्य मे स्थान-स्थान पर आए ढेरो दृष्टात प्रमाणित करते है। वस्तुवर्णन की उपर्युक्त धारणाओं की पुष्टि मे उनके काव्य से कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं —

मानसिंघ रा झूलणा

नखत अमोघ जनमीया, दुहु पखि राजन्ना,
दादा पीथल, भारमल, पचायण नन्ना,
ध्रूवा नवेग्रह राजयोग, मझि बार भवन्ना,
धनि महूरति जनमराति, धनि तास लगन्ना,
खग्गि हणू जिम लखिणह, जिम भीम अजन्ना,
दत्ता वीक्रम ओज बळि, कूरम करन्ना,
बडा गढा तोडणो, दैना वड दन्ना,
बस छनीसा मंधणा अढार वरन्ना,
हुव सुप्रसन्ना वालमीक, सरसं सुप्रसन्ना,
जैदे, सुखदे, बलवा, बलि व्यास वरन्ना,
आदि सकति प्रसन्न हू, गणपति प्रसन्ना,
काहे खडा चितीयैं मन्ना असमन्ना।

इस छद मे मानसिंह कछवाहा के वश का परिचय, ज्योतिष शास्त्र के अनुसार राजयोग देने वाले ग्रहो और शुभ लग्न-महूर्त आदि की जानकारी, हनूमान, लक्ष्मण, भीम, अर्जुन, कर्ण, विक्रमादित्य, बलि आदि पौराणिक-ऐतिहासिक पात्रों का ज्ञान, तथा वाल्मीकि, जयदेव, सुखदेव, वेदव्यास आदि कवियो की मोटी जान-

कारी परिलक्षित होती है। इसी कृति मे आगे चलकर अकबर की ओर से मानसिंह द्वारा किए गए सैन्य-प्रयाणो, छत्तीस राजकुलों, मुसलमान धर्म से सबधित तथ्यो तथा अनेक प्रकार के पौराणिक प्रसगो के सकेत स्थान-स्थान पर उपलब्ध हैं। इन सबसे कविकर्म की दुरूहता और विस्तृत ज्ञान की अपेक्षा प्रकट होती है।

विषय वस्तु की विविधता की दृष्टि से दुरसाकृत 'किरतार बावनी' एक बेजोड़ रचना है। उसमे पचास छदो मे विविध पेशो के लोगो के कष्टों का सहानुभूति पूर्ण वर्णन किया गया है। प्रमुख पेशे—किसान, नाविक, यात्रारक्षक, कासिद, महावत, सिपाही, चोर, पासीगर, माछीगर, वेश्या, भिखारी, गारुडी, ठग, पहरेदार, तैराक, भाट, लकडहारा, भील, कहार, खनिक, मरजीया, कसाई आदि बताए गए हैं।

काव्य-सौष्ठव

काव्य के छद, अलकार, रस आदि अन्य अनेक बाह्याभ्यतर उपादानों से ऊपर कवि की अपनी अभिव्यक्ति ही प्रमुख होती है, जो उसके काव्य को एक निजी विशिष्टता प्रदान करती है। यही अभिव्यक्ति रूढियों और परम्पराओ के वाग्जाल मे से उसके निजत्व को उजागर करती है। अत उस अभिव्यक्ति की व्याख्या ही किसी कवि के काव्य-सौष्ठव की सच्ची पहिचान होगी। इसी अभिव्यक्ति को 'शैली' मानने वाले पाश्चात्य आलोचकों ने 'स्टाइल इज दी मैन' कहकर इसका महत्व प्रतिपादित किया है।

दुरसा के काव्य मे इस आत्मीय अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप उनकी सबोधनात्मक शैली मे निहित समझा जाना चाहिए। राजदरबारो और युद्धो मे समान रूप से अपनी ओजस्वी वाणी मे वीर कृत्यो का अभिनदन करने वाले और क्षात्रधर्म की प्रतिष्ठा के लिए मर मिटने की प्रेरणा देने वाले उनके विरुदायक स्वरूप का प्रकाश जहा-जहा प्रतिबिम्बित हुआ, वे ही स्थल डिंगल के चारणी काव्य की आत्मा बन गए हैं। एक सच्चे चारण, कीर्ति का प्रसार करने वाले चारण, की इससे सुदर पहिचान सभव नही हो सकती। विद्वत्तापूर्ण वर्णनो, क्लिष्ट कल्पनाओं और शब्दाडबरों मे जकडी रूढियाँ तथा परपरायें डिंगल को चारण काव्य नही बना पाती। ऐसे ओजपूर्ण उद्बोधन ही उसे वह सज्ञा प्रदान कर सकते हैं। चाहे कोई प्रशस्ति-गीत हो, चाहे उद्बोधन हो या मरसिया हो, दुरसा एक सच्चे चारण की तरह उच्चतर धरातल पर खड़े होकर अपनी बुलद आवाज मे दोनों हाथों को उठाकर, हृदयों को आन्दोलित करते, यशगान करते हुए प्रतीत होते हैं। ऐसे समय उनका स्वर समूचे युग का, समस्त सस्कृति का स्वर बन जाता है।

ओज, स्फूर्ति, प्रेरणा, प्रोत्साहन और उद्बोधन से भरा ऐसा ही एक छद देखिए। 'रामदास चांदावत' के गीत मे दुरसा उसे मृत्यु रूपी मेहमान की आव-

भगत करने का आमत्रण देते हैं—

हुवै भगति हथवाह ओछाह सबळा हुवैं,
सुकज मुहडा तणो मनि सुहायो।
तू जिको वाछतो राम चादा तणा,
आज को मरण महमाण आयो ॥1॥

"खड्ग-प्रहारो की मनुहारो से सबन भी 'ओछे' हो रहे हैं, योद्धाओं के इस सत्कृत के समय आज मृत्यु रूपी मेहमान आ गया है, जिसकी तुझे अभिलाषा थी।"

महाराजा रायसिंह के शोकगीत (मरसिये) मे भी ऐसे ही एक युग-प्रवाही स्वर मे दुरसा ने बेलाग होकर रायसिंह की वदान्यता की प्रशसा मे ये पक्तिया कही हैं—

बळै कदी देखसा जदी बाखाणसा।
हुसी कोई हाथिया देण हारो॥

"फिर कभी दुनिया मे कोई हाथिया का इतना बडा दान करने वाला पैदा हुआ देखेंगे तो हम उसका बखान तब करेंगे।"

सभवत अभिव्यक्ति के इस कौशल से ही दुरसा ने जन-मन को प्रभावित किया, और जहा कही गए मान-सम्मान, धन व ऐश्वर्य प्राप्त किया। अकबर को सबोधित करते हुए कहा गया उनका गीत, महावतखा और बैरामखा को कहे गए उनके दोहे, मार्नासह की प्रशसा मे कहे गए उनके झूलणे(नीसाणी) तथा राव सुरताण, अमरसिंह आदि का यशवर्णन करते हुए उनके कवित्त आदि सभी मे उद्बोधन का यह स्वर प्रमुख रूप मे उभरकर आया है।

एक और पक्ष कवि की मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का भी है। वह कही भी विवादो मे नही उलझा है। मानसिंह और प्रताप के तथाकथित वैमनस्य की झलक भी कही उनके काव्य मे नही मिलती। अकबर की प्रशस्ति करते हुए उसने प्रताप का उल्लेख नही किया है। इसी प्रकार प्रताप के यश-वर्णन मे अकबर की निन्दा नही होनी चाहिए थी। यह निन्दा 'विरुद छिहत्तरी' के अतिरिक्त किसी अन्य काव्य में नही है। चूकि इस रचना की प्रामाणिकता विवादग्रस्त है, अत दुरसा की विचारधारा के अनुसार यह एक चिन्त्य विषय है। अन्य किसी भी गीत या छद मे, परम्परागत शत्रुता मे उलझे राजपूत कुलो की निन्दा को उन्होंने चतुराई से बचाया है। यह भी दुरसा की लोकप्रियता का एक कारण है। वैसे भी सारग्राही कवि को गुणो, आदर्शों और सत्कृत्यो का यशोगान ही अभीष्ट होना चाहिए।

दुरसा के काव्य-सौन्दर्य मे उनके शब्द-चित्रो की विशालता, व्यापकता और उदात्तता अत्यधिक प्रभावोत्पादक है। उनके युद्ध-वर्णनों मे पहाड रक्त मे रग

जात हैं, आकाश कुकुमांचित हो उठता है, धरती पर रक्त प्रवाह बहने लगता है, और उन सबके बीच विजयश्री को वरण करने वाले क्षत-विक्षत वीर की दीर्घ काय बलिष्ठ मूर्ति रक्तरंजित खड्ग लिए गर्व से माथा उठाये खडी दीखती है। ऐसे ओजस्वी और प्राणवत चित्र ही दुरसा के काव्य को जीवत, छविवत बनाते हैं।

दुरसा की कल्पनायें बडी भव्य है, उनका शब्दसयोजन मार्मिक है, उनका वर्ण विन्यास रसोद्रेक करने वाला है, उनकी शैली प्रेरणास्पद है, उनका वर्णन उद्दाम है, उनके उपमान दिव्य हैं, और उनके मूर्तिमत शब्द-चित्र गगनचुम्बी होकर दशो दिशाओ मे व्याप्त हैं।



अध्याय 6

समाज और संस्कृति

दुरसा के काव्य का समाज स्पष्टत दो भिन्न भागों मे विभक्त है। एक तरफ तो समृद्ध पर सघर्षशील सामन्ती समाज है, जिसके पास भूमि है, अनुचर हैं, सैनिक हैं, और इन सबके फलस्वरूप अपेक्षाकृत सपन्नता भी है। दूसरी ओर राज्याश्रित वर्ग के अतिरिक्त जनसामान्य है जो कठिन श्रम करने पर भी बडी कठिनाई से अपना पेट पाल सकता है। जो सामन्ती वर्ग है, उसे निरतर युद्धरत अथवा दान-तत्पर ही चित्रित किया गया है। युद्ध को विशुद्ध पारिभाषिक अर्थ मे 'युद्ध' के रूप मे ही चित्रित किया गया है, उसमे आदर्शों एव मूल्यो का टकराव अथवा द्वन्द्व की स्थिति स्पष्टत उभर कर नहीं आई है। *वीरता-प्रदर्शन एक करतब ही* बनकर रह गया है। उसके पीछे की सास्कृतिक पृष्ठभूमि बहुत थोडे प्रसगों मे ही उभर कर प्रत्यक्ष हुई है। ऐसे स्थलो पर अनेक कल्पनाओं और उक्तियो के बाव-जूद युद्ध औपचारिकताओ, रूढियो और परम्पराओं मे उलझकर रह गया है, वीरता पट्टेबाजी का प्रदर्शन ही बन गई है। जीवित समाज से, उसके प्रति किए गए अन्यायो की उपकृति के रूप मे, उसका कोई सबध नही रह गया है। जहा कही वीरता और युद्ध को कारणसम्मत बनाया गया है, वहा वह क्षात्रधर्म के पालन का व्रत लिए हुए है। डिंगल कवियो ने इस धर्म को अन्यत्र अनेकरूपो मे मुखरित किया है। इनमें से एक इस प्रकार है—

धर जाता ध्रम पलटता, त्रिया पडता ताव।
थै तीनू दिन मरण रा, कूण रक कुण राव॥

"जब धरती छिनी जाती हो, धर्म का अनादर हो रहा हो और स्त्री समाज विपदाग्रस्त हो—ये तीनो दिन मर मिटने के है, भले ही कोई गरीब हो या राजा हो।"

इस आदर्श का निर्वाह करने की प्रेरणा डिंगल के चारण-कवियो ने नाना प्रकार की काव्योक्तियों मे दी है। दुरसा के गीतो मे क्षत्रियो के इसी धर्म के उल्लेख हैं।

क्षात्रधर्म का यह वर्चस्व केन्द्रीय विदेशी-मुस्लिम सत्ता के विरोध के रूप मे

मुख्य रूप से प्रकट हुआ है। इसके पीछे दो भाव हैं, एक तो स्वय की स्वाधीनता की रक्षा का तथा दूसरा स्वधर्म को पराभव से उबारने का। इन दोनों भावों को दुरसा ने अपने काव्य मे स्थान-स्थान पर उभारा है। अपनी स्वाधीनता की रक्षा करते हुए कष्ट सहन करने वाले और अपनी लडकियो की शादी बादशाहों से करके उनकी कृपा अर्जित करने मे विश्वास नही करने वाले महाराणा के लिए कहे गये उनके गीत इस सबध मे दृष्टव्य हैं —

महाराणा प्रताप रो कवित्त (छप्पय)
अस लेगो अणदाग पाघ लेगो अणनामी।
गो आडा गवडाय, जिको बहतो धुर वामी।
नवरोजे नह गयो, न गो आतसा नवल्ली।
न गो झरोखा हेठ, जेठ दुनियाण दहल्ली।
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो म्रित साह प्रतापसी॥

"तुमने अपने घोडे को बादशाही सेना का दाग नही लगने दिया। तुम्हारी पगडी कभी किसी के आगे झुकी नही। तुम, जो हमेशा वामपथी—विरोध के विकट मार्ग पर चलने के कारण घोर सघर्ष करने वाले—बने रहे, अपनी प्रशसा के गीत गवाते हुए इस ससार से विदा हुए। तुम कभी नवरोज के जश्न मे नही शरीक हुए और न आतिशबाजियो मे। तुम कभी बादशाही दर्शनों के झरोखों के नीचे भी नहीं गए जहा जाते हुए दुनिया दहल उठती थी। ऐसी आन-बान वाला गुहिल वश का राणा अविजित ही चला गया, यह सोचकर बादशाह ने क्रोध से दात भीचकर अपनी जीभ काट ली। हे प्रताप, तुम्हारी मृत्यु पर इस दुख से नि श्वास छोडते हुए बादशाह की आखो मे आसू भर आये।"

मरणोपरात कहे गए इस शोक-काव्य मे राणा की स्वाधीनता की जय-जयकार करते हुए कवि ने स्वतत्रता के उच्चतम आदर्श की स्थापना की है। धर्म सकट-सबधी एक छद की कुछ पक्तियां भी बडी सराहनीय बन पडी हैं —

राउल राण राउ अनि राजा।
अकबरि नरि विनडिया अनेक॥
दुजडो धारो अभनमा दूदा।
हीदूकारि तुहालो हेक॥

"अकबर से आतकित जब अन्य राजा-राणा-रावल-राव असमर्थ हो गए तो अकेले तूने (सुरताण ने) तलवार उठा कर हिन्दुत्व की जयजयकार की।"

क्षत्रिय समाज के ऐसे वीरोचित कार्यों से दुरसा ने अनेक सांस्कृतिक मूल्यों को उद्भासित किया है, जैसे—दानवीरता, वचन-पालन, शरणागत रक्षा, स्वामिभक्ति, अतिथि सत्कार, प्रतिशोध, यशोकामना तथा सत्ता विरोध।

वचनपालन क्षत्रियो का प्रमुख गुण गिना गया है। इसके उदाहरण डिंगल साहित्य मे भी प्रचुर है। दुरसा ने मानसिंह सकतावत के गीत मे इस का बखान किया है। मानसिंह ने अपने मित्र भीम सीसोदिया को उसके आह्वान पर आकर युद्ध करने का वचन दिया था। हाजीपुर नामक स्थान पर जाकर उसने वचन पालन किया—"मेवाड़ धका पूरबगढ माल्है,अईयो सकतहरा उनमान। जग परदेस जीववा जावै, मरवा गयौ करारो मान॥" स्वामिभक्त मेडतिया मुकुन्ददास अपने स्वामी "राणा" के लिए बलिदान होकर वैकुण्ठ मे परमेश्वर के समान ही पूजित हुआ—

मोटा सामि सुछळि मेडतियै, मह्रि मोटो कीधो मरण।
परमेसर भेळा पूजीजै, वैकुठ वीर कळोधरणा॥

अदम्य उत्साह, हिम्मत और उत्कट वीरता के सद्गुणों का बखान करते हुए चौहान 'जसवत भाणोत' का वर्णन बडा समर्थ बन पडा है—

सोर सर पायरा तणौ वरसै सघण।
पेलज्यै सेल खग चढे पीठाणि॥
हाथ ऊभा किया मुगले हिंदुअे।
भाण रो स्यार बाखाणियो भाण॥

"जब गोलो-पत्थरो-बाणो की सघन वर्षा हो रही थी, ऐसे समय घोडे की पीठ पर चढकर भालो के प्रहारो से शत्रुओ को बेधते समय, मुगलों और हिन्दुओ ने समर्पण-भाव से हाथ ऊचे कर दिए, तो भाण के पुत्र की प्रशसा स्वय सूर्य ने की।"

प्रतिशोध की अग्नि से तत्कालीन क्षत्रिय समाज धधक रहा था। यह मानव सभ्यता की आदिम वृत्ति के रूप मे हरेक वीर के हृदय मे प्रज्वलित रहती थी। डिंगल काव्य भी इससे अछूता नही है। दुरसा ने "माडण" के गीत मे उस प्रतिशोध का यशोगान किया है—

वडो वैर विढि वाळीयो मयक सीहो वहै,
विसहरे, नरे मानी सुरे बात।

प्रतिशोध की ही भाति ऋण से उऋण होना भी एक बडी बात मानी जाती थी। दुरसा ने इस उऋण होने की भावना की ओर लक्ष्य करते हुए मेवाड के राणा की प्रशसा मे एक छद मे यह सकेत किया है—

"क्षत्रिया कुळ सहणो छोडवियो, राण दियते रायपुर"

"राणा ने "रायपुर" का दान देते हुए क्षत्रियो पर चले आ रहे चारणो के ऋण से जैसे क्षत्रिय कुल को मुक्त करवा लिया।"

वीर "चादा" को सत्ता के विरोध मे रहकर बादशाही राज्य से भी जकात वसूल करते हुए दिखाकर दुरसा ने सत्ता-विरोध की बात कही है—

आलम घर तणो जगाति उग्राहै,
अरबद धरा भरै डड आण।

राहू सदा लग ग्रहै चद रवि,
चद राहू ग्रहीया चहुआण ॥

दानवीरता की प्रशसा मे कहा गया एक गीत बीकानेर के महाराजा रार्यासह से सबध रखता है जिन्होंने 'शकर' नामक बारहठ को सवा करोड़ रुपए का दान दिया था—

सवलाखा ऊपर नवसहसा,
लाख पचीसू दीघ हिलोळ।
खित पुड घणा गड़ोथळ खावै,
वूडै छात बिया जस बोळ॥

"हे राठौड (नवसहस्र के विरुद को धारण करने वाले), तुमने सौ लाख के भी ऊपर पच्चीस लाख और प्रसन्न होकर दिए। इस पृथ्वी पर तुम्हारे इस यश के प्रवाह मे दूसरे अनेक राजा उथल-पुथल हो रहे हैं।]

दानवीरता के साथ ही गुणग्राह्यता का एक और स्वरूप भी परपरागत भारतीय सस्कृति के प्रतीक रूप मे तत्कालीन उच्च वर्ग मे विद्यमान था। इसका एक दृष्टात कवियो को पालकी मे बैठाकर राजा या दानदाता द्वारा स्वय कधा देने के रूप मे प्राप्य होता है। यह एक उच्च कोटि का आदर्श सम्मान समझा जाता था। बीकानेर के महाराजा रार्यासह ने कोड पसाव का दान देते समय कवि की पालकी मे जो कधा दिया उसके सूचक गीत का सबधित अश दुरसा ने इस प्रकार कहा है—

काध जिको तै दीध कलावत, अेही मौज लहर अनमध।
जस उर धकै आवता-जाता, बूड अनेरा मुकुटबध॥

"हे कल्याणसिंह के पुत्र, तुमने जो (कवि की पालकी के) कधा दिया, वह मानो दान के प्रबल प्रवाह की एक लहर बनगई, जिसके सामने आते अनेक मुकुट-धारी आते-जाते डूबने लग गए।"

"वीरभोग्या वसुधरा" के सनातन सत्य को दोहराते हुए दुरसा ने "तोगा सुरताणोत" के गीत मे इस पर बार-बार बल दिया है—

अग मछर मेलै नही आपणो।
तिके नर भोगवे कीय धरती तणो।
रोहड़ी कथा कूरम हिद ऊपनी।
मारका हाथि आवै सदा मेदनी॥

लेकिन वीरों का वीरत्व भी धर्मविहीन नही था। वीरो की धर्मपरायणता सदा प्रशसापूर्वक वर्णनीय रही है। युद्धभूमि मे जाने से पूर्व समस्त धार्मिक आचरण करने के प्रमाण दुरसा के साहित्य मे प्राप्त है—

इन नग्न चित्रो मे जहा विवशतायें, अभाव और जीवित रहने की समस्यायें ही दैत्याकार बनी हुई हैं, वहा ऊचे चारित्रिक गुणो और सास्कृतिक बुलन्दियो की बात करना ही अपराध होगी। मध्य युग के जो चित्र इतिहासो और काव्यो मे अभी तक मिले हैं उनकी तुलना मे दुरसा द्वारा चित्रित कोई चारसौ वर्ष पहिले का यह यथार्थ समाज इतिहासकारो के लिए एक चुनौती है। भारत का, विशेष-कर राजस्थान का, सामाजिक और सास्कृतिक इतिहास लिखने वाले विद्वानो के लिए दुरसा का यह काव्य एक बहुमूल्य धरोहर समझा जाना चाहिए।

सस्कृति के बाह्य पक्ष की भी विपुल सामग्री दुरसा के काव्य के सूक्ष्म अध्ययन से प्राप्त हो सकती है। तत्कालीन लोकप्रचलित वेष-भूषा, अस्त्र शस्त्र, साज-सज्जा, रूप-शृगार, आवासगृहो, कलाओ, विवाहों, रीति रिवाजो, परपराओं, मान्यताओ तथा लोक-जीवन के अन्य नानाविध विस्तार की सयोजक सामग्री दुरसा के काव्यो और गीतो म बिखरी मिलेगी। इस विषय मे दुरसा के रचे रूपक गीत अधिक सहायक हैं। कुमार अज्जा की 'गजगत' मे विवाह का एक सागोपाग रूपक है जिसमे वर-वधू के समस्त शृगार और वैवाहिक रीतिया का विस्तार से उल्लेख है। आखेट, वर्षा अतिथि-सत्कार आदि कई रूपको के गीत बहुत सुदर बन पडे हैं जिनमे तत्कालीन जीवन की झाकियां मिलती हैं।

काव्य की दृष्टि से डिंगल काव्य को अतिशयोक्ति का काव्य समझने वाले आलोचकों को उसे उसके सामाजिक और सास्कृतिक मूल्या के लिए भी जाचना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य मे दुरसा का काव्य नि सदेह बडा मूल्यवान प्रमाणित हो सकेगा।

अध्याय 7

ऐतिहासिक साक्ष्य

अब यह कोई अल्पज्ञात तथ्य नहीं रह गया है कि डिंगल काव्य, जो अधिकांशत दूहों और गीतों में समाहित है, ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। डिंगल कवियों ने व्यक्तियों और घटनाओं को ही अपने काव्य की मुख्य विषय-वस्तु बनाया था। अत इतिहास की दृष्टि से उनका पृथक् स्थान बन जाना समझ में आता है। तत्कालीन काव्य धारा में प्रचलित अभिव्यक्ति की रूढ़ियों और परंपराओं को समझने वाला कोई भी सुधी आलोचक अलकारों और रूपकों में लदी शब्दावली में से इतिहास का तथ्य सरलता से खोज सकता है। इतिहास के साथ इस अविच्छिन्न सबंध के कारण ही स्वय डिंगल गीतकारों ने अपने गीतों को 'साख री कविता'—साक्षी की कविता—कहना ठीक समझा है। इन्हें लिखते समय घटना-सबंधी उल्लेख निम्न प्रकार किया जाता है, यथा —राव बीकैजी वरसघ नै छोडायो तिण साख रो गीत (राव बीका ने वरसघ को छुड़ाया उस साक्षी का गीत), राव जैतसीजी काम आया तिण साख रो गीत (राव जैतसी काम आये उस साक्षी का गीत), आदि।

इसलिए साधारणत समस्त डिंगल काव्य से और विशेषत डिंगल गीतों से इतिहास की सामग्री का सकलन और अध्ययन किया जाना आवश्यक है। दुरसा ने भी शताधिक गीत लिखे हैं। 'माताजीरो छद' और 'किरतार बावनी' नामक रचनाओं के अतिरिक्त उनकी प्राय समस्त रचनायें किसी न किसी प्रकार से इतिहास से सबधित हैं। दुरसा समसामयिक राजनीति के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के निकट सपर्क में रहे, इसलिए उनकी जानकारी वैसे भी प्रामाणिक मानी जा सकती है।

गीतों की रचनाओं के लिए उपयुक्त अवसरों का महत्व था। जब कभी किसी वीर ने युद्ध किया, मृत्यु का वरण किया, अन्याय का विरोध किया, सत्ता के प्रति विरोध-प्रदर्शन किया अथवा कीर्ति के लिए कोई दान दिया, या दुर्ग, आवास, उद्यान आदि का निर्माण किया, तभी कवि की लेखनी को प्रेरणा मिली और उसने उस घटना के केन्द्र-बिन्दु को अपनी अभिव्यक्ति में समेट लिया। सम-

सामयिक साक्ष्य या इससे अधिक और क्या स्रोत हो सकता है ? जिस व्यक्ति या जो कार्य लोकप्रसिद्धि का पात्र होता था वही गीतों का विषय बन सकता था। निन्दा व प्रसंग भी यत्र-तत्र मिलते हैं, पर प्रशस्तिमूलक काव्य ही अधिक है।

राजस्थान का इतिहास तो अभी विस्तार से लिखे जाने की प्रतीक्षा में है। इसलिए ये छोटे-छोटे साक्ष्य भी बटोरे जाने चाहिए। भारतीय इतिहास की अनेक स्थापित धारणाओं में भी ऐसे कुछ प्रसंगों से संशोधन करने की आवश्यकता पड़ेगी। अभी तक मध्यकालीन इतिहासकारों ने फारसी, अरबी इतिहासों तथा विदेशियों के यात्रा-विवरणों का ही अधिक सहारा लिया है। उन्होंने डिंगल काव्यों को इतिहास से पृथक् मानते हुए या तो उनका अध्ययन ही नहीं किया और किया भी तो अतिशयोक्तिपूर्ण मानकर कोई महत्व नहीं दिया। यह सब काव्य-परम्पराओं से उनकी अनभिज्ञता के कारण हुआ।

राजस्थान का स्थानीय राजनैतिक इतिहास एक तरह से यहां के राजपूत राजवंशों द्वारा किए गए युद्धों से ही सबंधित है। चारण जाति राजपूतों के अत्यधिक निकट रही है। सामाजिक दृष्टि से समीप रहने के कारण राजनीति में भी चारणों का प्रवेश परामर्श, सहायक, पक्षधर, प्रशंसक आदि रूपों में रहा है। इसलिए चारणों के पास उनके ऐसे कार्यों के विषय में विश्वस्त जानकारी रहती आई है। इन्हीं जानकारियों ने उनकी रचनाओं को भी विश्वस्त बना दिया है।

दुरसा ने जिन-जिन व्यक्तियों और घटनाओं से सबंधित ऐतिहासिक गीत लिखे हैं उनमें से कुछ का विवरण यहां दिया जा रहा है। कुछ गीतों में वर्णित घटनाओं की इतर ऐतिहासिक स्रोतों से पुष्टि करके भी यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि दुरसा द्वारा दी गई जानकारी असत्य नहीं हैं —

(१) गीत गोपालदास सुरताणोत रो—'बाकीदास की ख्यात' (पृ० 62) के अनुसार यह दक्षिण के युद्ध में काम आया था। यह गीत उस युद्ध का साक्षी है।

(2) गीत मान सकतावत रो—'वीरविनोद' के अनुसार मानसिंह, भीम सीसोदिया को दिए गए वचन के अनुसार, पूर्व में हाजीपुरपट्टन नामक स्थान पर जाकर लड मरा था। यह गीत उसी घटना क्रम का साक्षी है।

(3) महाराजा रायसिंह कोडपसाव दियो तिण साख रो गीत—गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने 'बीकानेर राज्य का इतिहास' में 'दयालदास की ख्यात, के आधार पर इस घटना का उल्लेख किया है।

(4) गीत मेडतिया मुकुन्ददासजी रो—सुप्रसिद्ध जयमल मेडतिया का पुत्र मुकुन्ददास महाराणा अमरसिंह की सहायता करता हुआ राणपुर के

युद्ध मे काम आया था। इस गीत मे वर्णित इस घटना की पुष्टि 'बाँकीदास की ख्यात' मे पृ० 95 पर की गई है।

(5) गीत राजा श्री रायसिंघजी बीकानेरीया रो—यह गीत रायसिंह के जैसलमेर मे हुए विवाह के अवसर पर कहा गया है जो बीकानेर के सभी इतिहासो के अनुसार एक सत्य है।

(6) गीत जैमल मुहणोत रो—मारवाड के दीवान तथा अनेक युद्धो के सेनानायक जैमल मुहणोत नैणसी मुहणोत के पिता के रूप मे प्रसिद्ध हैं। जोधपुर-महाराजा गजसिंह के समय ये दीवान थे। गौ० ही० ओझा ने यह 'टिप्पणी मुहणोत नैणसी की ख्यात' (नागरी प्रचारिणी सभा, भाग पृ० 102) मे दी है।

इसी प्रकार ज्ञात ऐतिहासिक व्यक्तियो और घटनाओ से सभी गीतो का तारतम्य बैठाया जा सकता है। इस दृष्टि से दुरसाकृत कुछ प्रमुख गीत इस प्रकार हैं—

1 गीत देवडा सवरा रो	2 गीत जगमाल रो
3 गीत किसनसिंघ रो	4 गीत हाम देवडा रो
5 गीत सुरताण जैमलात रो	6 गीत नरबद सुरजणोत रो
7 गीत चहुवाण जसवत भाणोत रो	8 गीत रामदास चादावत रो
9 गीत माडणजी रो	10 गीत सोलकी वीरमदेजी रो
11 गीत सोलकी माला साम-दासोत रो	12 गीत तोगा सुरताणोत रो
13 गीत अचलदास बलभद्रोत रो	14 गीत चादाजी रो
15 गीत राणा अमरसिंह रो	16 गीत सुरताण रो दताणी रै जुद्ध रो
17 गीत देवडा प्रिथीराज रो	18 गीत राजा सूरसिंघ रो
19 गीत भाटी गोविन्ददास मानावत रो	20 गीत भाण सोनगरा रो
21 गीत कचरा कूपावत रा	22 गीत कर्मसेन रो
23 कुवर रतन महेसदासोत रो गीत	24 गीत भगवानदास ऊदावत रो
25 पूरणमल भाणावत रो गीत	26 बीजा हरराजोत रो गीत
27 गीत चीबा दूदाजी रो	28 गीत राजिश्री रोहितासजी रो
29 महाराजा रायसिंह चीतौड परणिया तिण साख रो गीत	30 गीत प्रिथीराजजी री वेल रो

इस प्रसग मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि मध्यकालीन राजस्थानी

साहित्य यहां के स्थानीय इतिहास से इतना घुला-मिला है कि दोनों को पृथक् करके देखना बड़ा दुष्कर है। वास्तव में तो इस साहित्य को भली प्रकार समझने के लिए राजस्थान के इतिहास की विस्तृत जानकारी और यहां की सांस्कृतिक परम्पराओं का परिचय दोनों ही बहुत आवश्यक हैं। दुरसा जैसे प्रतिभाशाली और अपने समय के अति प्रसिद्ध कवि के गीतों और दूसरी कृतियों से यह तथ्य और भी पुष्ट होता है।

अध्याय 8

एक मूल्यांकन

दुरसा को कुछ आलोचकों ने एक राष्ट्रकवि के रूप में उभारने का प्रयास किया है। उनका आधार 'विरुद छिहत्तरी' नामक रचना है, जिसमें अकबर को एक हिन्दू विरोधी के रूप में चित्रित किया गया है और महाराणा प्रताप को देश-धर्म के प्रबल रक्षक के रूप में। कुछ शोध विद्वानों ने 'विरुद छिहत्तरी' की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। उनकी मान्यता है कि दुरसा जैसा प्रौढ़ कवि, जिसने अकबर की प्रशंसा में भी काव्य सृजन किया है और जिसके विषय में अकबर के सान्निध्य की दंतकथायें भी प्रचलित हैं, बादशाह के लिए इतने ओछे शब्द—अकबरिया, तुरकड़ा, आदि—का प्रयोग नहीं कर सकता। दूसरे, कई ऐतिहासिक तथ्य भी, जैसे देवारी द्वार का उल्लेख, भी इतिहास विरुद्ध हैं, क्योंकि उस समय उनका अस्तित्व नहीं था। तीसरे, 'विरुद छिहत्तरी' में प्रयुक्त भाषा तथा आधुनिक भावनाओं की छाया भी दुरसा की भाषा और तत्कालीन कवियों के विचारों से मेल नहीं खाती। इन तर्कों के सामर्थ्य को मानते हुए दुरसा की कृति के रूप में 'विरुद छिहत्तरी' पर कम से कम चर्चा करने की चेष्टा की गई है। हां, उद्धरणों में उसके चुने हुए सोरठे अवश्य दिए हैं ताकि इस साहित्यिक विवाद से परे रहते हुए भी काव्य का रस लिया जा सके।

राष्ट्रकवि के रूप में स्थापना करने वाले आलोचक यहां तक तो ठीक ही हैं कि दुरसा ने पराधीनता स्वीकार न करने वाले वीरों—राणा प्रताप, राव चन्द्रसेन, राव सुरताण, आदि की मुक्तकण्ठ से सराहना की है। इस प्रसंग में उन्हें बादशाही ताकत के सामने न झुकने वाले और हिन्दुत्व के पोषक के रूप में चित्रित किया गया है। पर इनसे कम प्रशंसा उन अन्य अनेक वीरों की भी नहीं की गई है, जिन्होंने मुगलों के पक्ष में लड़ते हुए, स्वामिभक्त सेवक के रूप में कट मरते हुए, अथवा पारस्परिक वैर का प्रतिशोध लेते हुए, वीरता का प्रदर्शन किया। इस दृष्टि से ऐसी कोई विशिष्टता नहीं रह जाती है जिसमें दुरसा ने कुछ चरित्र-नायकों को दूसरों की तुलना में अधिक गौरवान्वित किया हो। आज के धार्मिक परिप्रेक्ष्य में

अथवा स्वतन्त्रता के पुजारियो की भूमिका के रूप मे उन घटनाओं पर दृष्टिपात करते हैं तो वे पात्र अवश्य दूसरो से पृथक् और गौरवशाली दिखाई देते हैं। पर जहा तक चारण-काव्य का प्रश्न है उसमे उन्ही गुणो की वन्दना की गई है जो किसी वीर विशेष मे दिखाई दिए। दानवीर की वदान्यता, युद्धवीर का शौर्य, स्वतन्त्रता के रक्षक का स्वातन्त्र्य-प्रेम, धर्म रक्षक की धर्म-परायणता, स्वामिभक्त का त्याग—जहा जैसा देखा गया उसकी सराहना की गई। इसलिए जहा प्रताप को धर्मरक्षक और स्वतन्त्रता प्रेमी के रूप मे वन्दित किया गया है, वही अकबर के अवतार रूप को, कछावा मानसिंह के अद्भुत सेनापतित्व को, खैरामखा और महावतखा की वदान्यता को यशगीतो मे समेट कर दिखाया गया है। ऐसी स्थिति मे यह कहना सभवत सगत नही होगा कि दुरसा आधुनिक अर्थों मे 'राष्ट्रकवि' थे। तत्कालीन काव्य-परपराओ और चारण कवियो की विशेष स्थिति का पूरी तरह अध्ययन किए बिना इस प्रकार के निर्णयात्मक दृष्टिकोण को अपनाना सही नही है। यदि दुरसा को आज के सदर्भों मे राष्ट्रकवि मानें तो उनके चरित्रनायक राणा प्रताप को सकटो मे डालने वाले बादशाह अकबर तथा कछावा मानसिंह की प्रशस्तियो के लिए क्या दलील दी जा सकती है? इसलिए अच्छा यही होगा कि दुरसा को तत्कालीन परिस्थितियो मे रख कर उनका सही मूल्याकन किया जाए।

दूसरा बडा श्रेय जो दुरसा को दिया जाता है वह उनके द्वारा अर्जित यश और द्रव्य, तथा चारण समाज के लिए और लोकहित के अन्य कार्यों मे किए गए व्यय का है। दुरसा के एक लोकव्यवहारज्ञ सफल कवि होने के नाते यह बात समझ मे आती है। भौतिक सफलता को श्रेष्ठ काव्य की कसौटी के रूप मे तो स्वीकार करने का प्रश्न नही उठता, पर कवि की लोकप्रियता की बात इससे अवश्य सिद्ध होती है। इस मान्यता मे कोई दो मत नही होने चाहिए कि दुरसा न केवल चारण समाज मे बल्कि उच्च वर्ग के शासक एव सामत वर्ग मे भी बडे प्रिय थे, और उन्होंने प्रचुर द्रव्य एव यश अर्जित किया था। उन्हे अनेक 'लाखपसावो' तथा 'कोड पसावो' के अतिरिक्त गावो की जागीरें तथा अन्य दानादि भी प्राप्त हुए थे। अपने सुदीर्घ और सयमित जीवन के कारण वे यह सब कुछ प्राप्त करने मे सफल हुए।

लेकिन एक कवि के रूप मे उनका मूल्याकन करते समय इस प्रश्न को दूसरे पहलुओ से देखना होगा। यह सही है कि दुरसा ने पारपरिक रीति से क्षात्र-धर्मोचित गुणो का बखान कर तत्कालीन क्षत्रिय समाज को अपने कर्तव्यो के प्रति जागरूक बनाए रखा, पर ऐसा करने मे अपने पूर्वगामी कवियो से उनकी कोई विशेषता नही रही। यदि महाराणाओ के प्रसग मे ही लिखा जाये तो महाराणा कुभा, सागा आदि के लिए ऐसे ही उद्गार पहिले भी कवियो ने प्रकट किए थे। राव

अमरसिंह के विद्रोह को शत-शत छदो मे अनेक समकालीन भाटो चारणो ने दुरसा से भी अधिक समर्थ ढग से बखाना है।

उत्तम काव्य की विभिन्न विधाओं के श्रेष्ठ सर्जको की गिनती मे भी दुरसा का नाम कही नही लिया जाता है—

कविते 'अलू', दूहे 'करमाणद', पात 'ईसर' विद्या चौ पूर।
छदे 'मेहो', झूलणे 'मालो', 'सूर' पदे, गीते 'हरसूर'॥

और भी—

कवित 'रूप', 'नरहरी' छप्पय, 'सूरजमल' के छद।
गहरी झमक 'गणेस' की, रूपक 'हुकमीचन्द'॥

गीतो के विषय मे चारण कवियो की आलोचनायें अपने ही ढग की होती थी। जैसे गीतो के विषय मे कही गई उक्तिया देखिए—

"गीत गीत हुकमीचद कहग्यो, हमैं गीतडी गावो।"
"हुकमीचद रा हालिया, गुरडवचा जिम गीत"
हुकमीचद तणा कहिया थका, फेरवा गीत महाशन फेंकै।"
"सकरियै सामोर रा गोळीहदा गीत।"
"गीता गिरवरियौह, पीता दारू हद पडै।
पिरथी परवरियौह, सारा कव लोगा सिरै।"

पर, इस प्रकार प्रसिद्ध कवि-उक्तियो मे समाना ही एक मात्र मूल्याकन नही है। अनेक सिद्धहस्त कवियो को भी इस प्रकार का सम्मान नही मिल पाया है।

ऐसी स्थिति मे दुरसा आढा को किसी क्षेत्र विशेष मे अतिविशिष्ट नही मानते हुए भी उनका सपूर्ण कृतित्व एक पर्याप्त ऊचे धरातल पर प्रतिष्ठित प्रतीत होता है। इस प्रतिष्ठा और मान्यता के आधार पर्याप्त ठोस है। दुरसा की भाषा, उनका पाडित्य, छन्द-रचना का कौशल, रूपक खडे करने की अद्भुत प्रतिभा, और इन सबसे ऊपर उनकी ओजपूर्ण उदात्त शैली वर्ण्य विषय का एक दिव्य चित्र प्रस्तुत करने मे समर्थ हुए हैं। इन सब काव्योचित गुणो का सम्मिलित प्रभाव ही दुरसा के कृतित्व की सच्ची सफलता है। इस प्रकार का सर्वतोमुखी सामजस्य विरले ही रचनाकारो मे उपलब्ध होता है।

अपनी प्रौढ़ प्राजल भाषा को 'वयण सगाई' और अन्य अलकारो से सजोकर जब वे विविध रूपका के मनोहारी उद्यान मे क्रीडा करवाते है तो उनकी प्रतिभा से चमत्कृत होना पडता है। जब वे अत्यत ओजपूर्ण शब्दो और भव्य कल्पनाओ से किसी आदर्श व्यक्तित्व का चित्र खीचते हैं तो उसका विराट स्वरूप हृदय पर तत्काल एक गहरी छाप छोड देता है। जब वह पाडित्यपूर्ण उक्तियो की एक पर एक शृखलायें सी गूथने लगते हैं और सास्कृतिक सदर्भों का ज्ञानकोश खोल देते हैं तो उनकी विद्वत्ता और सूझ-बूझ के आगे नतमस्तक होना पडता है।

अभिव्यक्ति की यह सर्वांगीणता ही दुरसा के काव्य को प्राण बनी हुई है। इसी सदर्भ म चारण कवि के स्वर मे स्वर मिलाकर दुरसा की समर्थ उक्तियों के लिए उनकी वचनसिद्धता को स्वीकार करना पडता है—

सगत रा पुत्र जाणै कोइक वचनसिद्ध।
उगत री जुगत रा घाट वँडा॥

"उक्ति की युक्ति का अतिविकट मार्ग कोई-कोई वचनसिद्ध चारण कवि ही जान पाते है।"

निस्सदेह दुरसा आढा ऐसे ही वचनसिद्ध शक्तिपुत्र थे।

परिशिष्ट

रचनाओं से उद्धरण

विरुद छिहत्तरी

सोरठा

बुहा अडेरा बाट, वाट तिक्ण बहणो विसद।
खाग त्याग खत्रवाट, पूरो राण प्रतापसी ॥1॥
अकबर पथर अनेक, के भूपत भेळा किया।
हाय न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥2॥
अकबर हिये उचाट, रात दिवस लागी रहै।
रजवट बस समराट, पाटप राण प्रतापसी ॥3॥
अकबर समद अथाह, तिंह डूबा हिन्दू-तुरक।
मेवाडो तिण माह, पोयण फूल प्रतापसी ॥4॥
हळदीघाट हरोळ, घमड उतारण अरि घडा।
आरण करण अडोळ, पुहुच्यो राण प्रतापसी ॥5॥
थिरग्रप हिन्दुसथान, लातरगा मन लोभ लग।
माता भूमी मान, पूजे राण प्रतापसी ॥6॥
सेला अणी सिनान, धारातीरथ मे धसै।
देण धरम रणदान, पुरट सरीर प्रतापसी ॥7॥
उडै रीठ अणपार, पीठ लगा लाखा पिसण।
नेठीगार नवार, पैठो उदियाचल पतो ॥8॥
लंघण कर लकाळ, सादूळो भूखो सुवै।
कुळवट छोड श्रपाळ, पैड न देत प्रतापसी ॥9॥
बडी विपत सह बीर, वडी कीत खाटी वसू।
धरम धुरधर धीर, पोरस धिनो प्रतापसी ॥10॥
जिण रो जस जग माह,जिणरो जग धिन जीवणो।
नेड़ो अपजस नाह, पणधर धिनो प्रतापसी ॥11॥

गीत मुकुददास मेड़तिया रो

राणा ची चाढ राणपुरि रहते,
खत बाधरीयू नवे खडे।
कटका पूठि मडतै कमधज,
मुकुन्द मुकुन्द चै रिदै मडे ॥
मुकुन्ददास पहचाडि मरणदिनि,
पूगू लेखवता तिणि पोति ।
सावड भीड विचै न समाणो
जैमल तणो समाणो जोति ॥2॥
मोरू मुअू कामि मेवाडा,
दळ थामे विहडे दुअण ।
तन आपरा न कीघू टाळू,
हरि था तन भेळो हुअण ॥3॥
मोटा सामि सुछळि मेडतियै,
महि मोटो कीधो मरण ।
परमेसर भेळो पूजीजै,
वैंकुठवीर कळोधरण ॥4॥

राव अमरसिंघ रा झूलणा

जाणै सोर भड किकयो, जामगी नगाडे ।
किर नरसिंघ निकासियो, हरि पत्थर फाडे ॥
काढे बीजळ कोपियो, हाथळ अूपाडे ।
पळवट अूतापा कडे, जमदढ धूराडे ॥
हिरणाकुस ज्यू हाथळे, पाडियो पछाडे ।
सिंघ अमर नरसिंघ ज्यू बैठो बबाडे ॥
अूचडिया असुरा सुरा, गयपाग सुहाडे ।
जाणे दुरजोधन तणा, भुज भीम भमाडे ॥
किर कपि धाम विघूसियो राक्स रोसाडे ।
किर लका रामण तणा हणवत लगाडे ॥

राव अमर दिली दळा, पाधर पोठाडे ।
ग्रोठी रावत पोढियो, किर लक कमाडे ॥

गीत

राणा प्रताप रो मरसियो

सामो आवियो सुरसाथ सहेतो,
भूच वहा भूदाणा ।
अकबर साह सरस अणमिलिया
राम कहे मिल राणा ॥1॥

प्रमगुर कहे पधारो पातल,
प्राक्षा करण प्रवाडा ।
हेवे सरस अमलिया हिंदू,
मोसू मिल मेवाडा ॥2॥

एककार ज रहियो थळगो,
अकबर सरस अनैसो ।
विसन भणै रुद्र ब्रह्म विवाळै,
बीजा सागण वैसो ॥3॥

गीत राठौड़ प्रथीराज री "वेलि" री

रुकमणि गुण लखण, रूप गुण रचवण,
वेलि तास कुण करे वखाण ।
पाचमो वेद भाखियो पीथल,
पुणियो उगणीसमो पुराण ॥1॥

केवल भगत अयाह कलावत,
तैं जु किसन-री गुण तवियो ।
चिहु पाचमो वेद चालवियो,
नवदूणम गति नीगमियो ॥२॥

मैं कहियो हरभगत प्रथीमल,
अगम अगोचर अति अचड ।
व्यास तणा भाखिया समोवड,
ब्रह्मतणा भाखिया वड ॥3॥

मरसियो महाराज रार्यासघ कल्याणमलोत रो

बडौ सूर सुदतार रार्यासघ विसरामियो,
विढण कुण कवारी घडा वरसी ।
कूजरा तणी मोहताद करसी कवण,
कवण कोडा तणी मोज करसी ॥1॥

कळहगुर दानगुर हालियो कलाउत,
लाख ऊपर कवण बाग लेसी ।
अमा गजराज लख मोल कुण आपसी,
दान कुण रीझ सौलाख देसी ॥2॥

जैतहर आभरण सतर घड जीपणा,
धरै कुण धडा दहवाट बाजा ।
दान फौजा तणा कवण गहणा दियै,
रतन री मोल कुण दियै राजा ॥3॥

हिंदवा छात दीय वात ले हालियो,
बाळग्यो आक जुग चिहू दाने ।
हूसत हव हीडता देखसा रायहर,
कोड हव वजाने सुणस काने ॥4॥

वीरमदे सोलंकी रा दूहा

ईखे अकवर साह, वीर अमर चा वाणिया ।
काळो केहर कणणियो, हाथी हायळ वाह ॥
झालो झाल भुजेह, वाघ जिहो वेढाइतो ।
जडियो तिण वेळा जिरह, वणियो वीरमदेह ॥
दुजण साल तिण दीह, नउ झूसण मावै नही ।
असमर हाथळ ऊससे, सीह वळोधर सीह ॥

समहर वहते सार, देने बर दूदावता।
पूतारै पडिहारिया, वीरम ववा जुझार ॥
बाके असि वेबाह, सेल वच्छेवा साहिया।
गा माझो वहि माझीए, एके गाहे गाह ॥
रीठा वीरमदेह, काळो वाळाहण वरै।
पासाडै परवत तणै, अरि गा ओला लेह ॥
थाळै सू विवळास, कुमारा गिरवर वीया।
आयो पाघर अजविये, सुरताणी दळ सास ॥
वाळघमळ विरदैत, वीरमदे जिम जिम वधे।
दूजो तिम तिम देखीय, नीमालग नउतेत ॥
वीरम ग्रकमि सुवाह, लागो लुहडो ही पक्रो।
सपेखे सतोखीया, मात पिता मन माह ॥

गीत अकबर बादसाह री

बाणावळि लखण क अरजण बाणावलि,
सिरदस रोळण कस सधार।
सासो भाज हुमायु समोभ्रम,
अक्बरसाह क्वण अवतार ॥1॥

निगम साख मानुख गत नाहीं,
असपत कथ साचो जण वार।
वेधण भ्रमर क तू ग्रक्वेधण,
गिरतारण कै तू गिरतार ॥2॥

जोगी परा करामत जोता,
आदम नही वडो कोई अस।
धूसण घणख क करण विधूसण,
वसरघू कै तू जदुवस ॥3॥

आख दलीम कूण तू इण मे,
अनत किना नर प्रगट इहा।
सायर वाघणहार दिलेसर,
काळी नाथणहार किहा ॥4॥

कुमार अज्जाजी नो गजगत

घागे पोखणाजी, वस रो वधामणा।
कथ कोडामणाजी, भारथ भामणा॥
भामणा अपछर लिये भारथ, नियण माल कोडामणा।
अतरूप, डायो, नाग, अणवर, बहादुर वीयामणा॥
आयुध आखा, थाळ ओडण, वसर ढाल वधामणा।
भालोल भळके, धगे भाले, पटे गरजे पाखणा॥
गहके ग्रीधणी जी, के पळकज पखणी।
हहके डेयणी जी, जवुक जोगणी॥
जोगणी जबक प्रेत पळचर, पिसा वखमल पखजो।
नोहराळ वोह मुखाळ निसाचर, करक्सा यत काक्णी॥
चापक भेख भूत बेतर, डेयणी अर डायणी।
वैकुंठ गो तन वाग वेचण, घवड देहालाघणी॥

गीत मानसिंघ सकतावत रो हाजीपुर री वेढ़ रो

मेवाड थका पूरवगढ माल्है,
अईयो सकतहरा उनमान।
जग परदेस जीवबा जावै,
मरवा गयो करारो मान॥ ॥1॥

माटीपणो तुहाळो माना,
रहियो घणै घणा दिन रोस।
कोस हेक मरवा जावै कुण,
मवळो गयो हजारा कोस॥ 2॥

मानसिंघ धिन धिन मेवाडा
अत प्रव भीम तणो अवसाण।
जोळा हुवै घणा नर जीवा
भेळो हुवो समोभ्रम भाण॥ 3॥

पोहू वदियो जहगीर पातसाह,
कहियो धिन राणें करण।
ऊगता सूरज जिम ऊगो,
मानसिंघ वाळो मरण॥ 4॥

गीत सोलंकी रायसिंघ वीरा हमीरोत रो

चितडा चालि रे चालुक रे चलणे,
थूडे दाळिद थारो।
वडदाता सुणिजे वीराउत
हैमर बगसण हारो ॥ 1 ॥
मो मन रायासीघ मागिवा,
हरख करे दिसि हालै।
एकण मोज हमीर अभिनिमो,
पाता दाळिद पालै ॥ 2 ॥
खागे मारि वडा खळ खेसै,
दान सुपात्रा दावै।
साही माळधणी सोलकी,
रासो वडछळ रावै ॥ 3 ॥

गीत राणा अमरसिंघ रो

सागण दूसरा अभनमा उदैसी, अमरा अवर अडियो।
दै आसीस तनै दसरावो, नवरोजे ना वडियो ॥ 1 ॥
धरचै चरण तूझ चीतोडा, पुहपमाळ पहरावै।
दासपणो न करै दीवाळी, ईद तणै घर आवै ॥ 2 ॥
पातल रा छळ जाग पतावत, अरसी रा छळ आगै ॥
अिळ जसरात जनमिया अमरा, जमारात नह जागै ॥ 3 ॥
चित्रागढ हद सोह चाढवा, सोह हमीर सरीखा।
लाखाहरा नकू लेखवियो, तथ मेलै तारीखा ॥ 4 ॥

गीत राणा अमरसिंघ रो

अणदीठा जिके गाविया अधपत, अणदीधा गाया अवर।
मागू हू इतरो मेवाडा, एकण तो तोरे अमर ॥ 1 ॥
गाया म्हैं मागिया पखै गुण, गढपति गामापती गणो ॥
मोटा खत्री द्रवो मेवाडा, राण खत्रिवस तणो रणो ॥ 2 ॥

राव रावत रावळ के राजा, राणाहरैं राखियो रिण।
तू हिंदवाण धणी पातलतण, तो गोढा मागजे तिण ॥ 3 ॥

रिण राखियो घणो राजाने, मिलवा न करैं मूझ मन।
कर श्रूरण कूभेण क्लोधर, राण अठारह रायहर ॥ 4 ॥

सोह सीलणो कियो सीसोदैं, सूर मोम ते साखि सुर।
छत्रिया कुळ लहणो छोडवियो, राण दियतै रायपुर ॥ 5 ॥

संदर्भ ग्रंथ-सूची

मुद्रित ग्रंथ

1 रघुवरजस-प्रकास—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1960
2 रघुनाथ रूपक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
3 डिंगल गीत साहित्य—डा० नारायणसिंह भाटी—चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1971
4 वीर गीत-संग्रह—भाग 1-2—सौभाग्यसिंह शेखावत—राज० प्रा० वि० प्र० जोधपुर, 1968
5 राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मनारिया, प्रयाग।
6 राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी, कलकत्ता।
7 चारण साहित्य का इतिहास भाग 1—डा० मोहनलाल जिज्ञासु, चारण सभा, जोधपुर, 1968
8 गीतमंजरी—अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, 1944
9 राजस्थानी सबद कोस—डा० सीताराम लालस, चौपासनी शोध संस्थान, जोधपुर
10 प्राचीन राजस्थानी कवि (मुद्रणाधीन)—रावत सारस्वत—डा० ब्रजमोहन जावलिया—रा० भा० प्र० सभा, जयपुर
11 महाराणायश प्रकाश, भूरसिंह शेखावत मथुर (खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई)
12 प्राकृत पैंगलम्, भाग 1-2 वाराणसी 1962
13 छंद-प्रभाकर, बिलासपुर, 1926
14 संक्षिप्त अलंकार मंजरी, प्रयाग, 1971
15 हिस्ट्री ऑफ राजस्थानी लिटरेचर, डा० हीरालाल माहेश्वरी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1980

राव रावत रावळ के राजा, राणाहरै राखियो रिण।
तू हिंदवाण धणी पातलतण, तो गोढा मागजे तिण ॥ 3 ॥

रिण राखियो धणो राजाने, मिलवा न करै मूझ मन।
कर भूरण नूभेण कलोधर, राण अठारह रायहर ॥ 4 ॥

सोह सीलणो वियो सीसोदै, सूर सोम ते साखि सुर।
छत्रिया कुळ लहणो छोडवियो, राण दियतै रायगुर ॥ 5 ॥

संदर्भ ग्रंथ-सूची

मुद्रित ग्रंथ

1 रघुवरजस-प्रकास—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1960
2 रघुनाथ-रूपक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
3 डिंगल गीत-साहित्य—डा॰ नारायणसिंह भाटी—चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1971
4 वीर गीत-संग्रह—भाग 1-2—सौभाग्यसिंह शेखावत—राज॰ प्रा॰ वि॰ प्र॰ जोधपुर, 1968
5 राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा॰ मोतीलाल मेनारिया, प्रयाग।
6 राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा॰ हीरालाल माहेश्वरी, कलकत्ता।
7. चारण साहित्य का इतिहास भाग-1—डा॰ मोहनलाल जिज्ञासु, चारण सभा, जोधपुर, 1968
8 गीतमंजरी—अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, 1944
9 राजस्थानी सबद कोस—डा॰ सीताराम लालस, चौपासनी शोध संस्थान, जोधपुर
10. प्राचीन राजस्थानी कवि (मुद्रणाधीन)—रावत सारस्वत—डा॰ ब्रजमोहन जावलिया—रा॰ भा॰ प्र॰ सभा, जयपुर
11. महाराणायश-प्रकाश, भूरसिंह शेखावत, बेगूर (खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई)
12 प्राकृत पैंगलम्, भाग 1-2 वाराणसी, 1952
13 छंद-प्रभाकर, बिलासपुर, 1926
14 भारतीय अलंकार मंजरी, प्रयाग, 1971
15. हिस्ट्री ओफ राजस्थानी लिटरेचर, डा॰ हीरालाल माहेश्वरी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1980

हस्तलिखित ग्रंथ

1 दुरसा आढ़ा जीवन और साहित्य—डा० लक्ष्मीनारायण कुशवाहा, काशीपुर
(पी-एच० डी० उपाधि के लिए आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध-प्रबंध)
2 डिंगल गीतों के हस्तलिखित ग्रंथ (रावत सारस्वत का संग्रह)
3 दुरसा आढ़ा के ग्रंथों की पाडुलिपियां (डा० हीरालाल माहेश्वरी का संग्रह)

रावत सारस्वत

1 डिंगल गीत—रावत सारस्वत—सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, 1970
2 महादेव पारवती री वेलि—रावत सारस्वत—सा० रा० रि० इं०, बीकानेर, 1970
3 दलपतविलास—रावत सारस्वत—सा० रा० रि० इ०, बीकानेर, 1970
4 मरुवाणी (मासिक पत्र)—रावत सारस्वत, (राज० भा० प्र० सभा, जयपुर) वर्ष 4 5 (1959-60)